परिप्रेक्ष्य

शैक्षिक योजना और प्रशासन का सामाजिक-आर्थिक संदर्भ

वर्ष 23, अंक 3, दिसंबर 2016

राष्ट्रीय शैक्षिक योजना एवं प्रशासन विश्वविद्यालय
17-बी, श्री अरविंद मार्ग, नई दिल्ली-110 016

500 प्रतियां

© राष्ट्रीय शैक्षिक योजना एवं प्रशासन विश्वविद्यालय, 2016
(भारत सरकार द्वारा विश्वविद्यालय अनुदान आयोग अधिनियम 1956 की धारा 3 के अंतर्गत घोषित)

इस पत्रिका का प्रकाशन प्रति वर्ष अप्रैल, अगस्त और दिसंबर माह में किया जाता है। इसकी प्रतियां चुनिंदा और इच्छुक व्यक्तियों तथा संस्थानों को नि:शुल्क भेजी जाती हैं। यह न्यूपा की वेबसाइट: www.nuepa.org पर नि:शुल्क उपलब्ध है। इसे प्राप्त करने के इच्छुक व्यक्ति और संस्थान निम्निलिखित पते पर आवेदन करें :

अकादमिक संपादक

परिप्रेक्ष्य

राष्ट्रीय शैक्षिक योजना एवं प्रशासन विश्वविद्यालय (न्यूपा)
17–बी, श्री अरविंद मार्ग, नई दिल्ली–110 016

राष्ट्रीय शैक्षिक योजना एवं प्रशासन विश्वविद्यालय (न्यूपा) के लिए कुलसचिव, न्यूपा द्वारा प्रकाशित तथा बचन सिंह, बी–275, अवन्तिका, सेक्टर–1, रोहिणी, नई दिल्ली द्वारा लेजर टाइपसेट होकर मै. पावर प्रिन्टर्स, नई दिल्ली में न्यूपा के प्रकाशन विभाग द्वारा मुद्रित।

परिप्रेक्ष्य
वर्ष 23, अंक 3, दिसंबर 2016

विषय सूची

आलेख

रजनी रंजन सिंह एवं **त्रिलोकी सिंह**
भारतीय शिक्षा प्रणाली की समकालीन चुनौतियां 1

सुमित कुमार
भारत में ज्ञान आधारित उद्योग एवं उच्च शिक्षा संस्थाओं का क्षेत्रीय वितरण तथा प्रादेशिक भिन्नताएँ 15

ऋषभ कुमार मिश्र
कक्षा विमर्श में पाठ्यपुस्तकों की भूमिका 29

प्रभात कुमार
रवीन्द्रनाथ टैगोर के चिंतन में मातृभाषा और समग्र विकास एवं सृजन के अंत:संबंधों की खोज 47

बीरेन्द्र सिंह रावत एवं **रजनी**
भाषा शिक्षण में आलोचनात्मक परिप्रेक्ष्य की संभावना 57

शोध टिप्पणी / संवाद

दामोदर जैन
अध्यापक शिक्षा एवं प्रशिक्षण की आवश्यकता और मौजूदा व्यवस्था 71

वेटुकुरी पी.एस. राजू
हरियाणा के मेवात जिले में प्राथमिक स्तर पर अनामांकन और मुस्लिम बच्चों के विद्यालय छोड़ने के कारण 89

अक्षय कुमार
पारिवारिक वातावरण का किशोरों की शैक्षिक उपलब्धि में योगदान 109

मुरलीधर मिश्रा एवं **ललित कुमार पोषवाल**
आचार्य कामन्दक की कामन्दकीय नीतिसार में निहित शिक्षक की संकल्पना 119

चिंतक और चिंतन

दिव्यांशु पटेल
संवैधानिक मूल्य, शिक्षा एवं लोकतंत्र: डा. अम्बेडकर के शिक्षा दर्शन का विवेचन 133

परिप्रेक्ष्य
वर्ष 23, अंक 3, दिसंबर 2016

भारतीय शिक्षा प्रणाली की समकालीन चुनौतियां

रजनी रंजन सिंह* एवं **त्रिलोकी सिंह***

सारांश

भारत के लिए वर्तमान दौर शिक्षा के गुणात्मक उन्नयन हेतु किये जा रहे संरचनात्मक परिवर्तनों का दौर है। आज 1986 की राष्ट्रीय शिक्षा नीति के बाद से चले आ रहे रिक्ति को भरने हेतु किये गए प्रयासों के अनुरूप नई राष्ट्रीय शिक्षा नीति बनाने हेतु गठित सुब्रमण्यम समिति 2016 की सिफारिशें चर्चा का विषय रह गयीं हैं। यदि हम चाहते हैं कि वैश्वीकरण के इस दौर में भारतीय शिक्षा संस्थान भी अंतर्राष्ट्रीय स्तर पर प्रतिस्पर्धा कर सकें तो उनमें आधारभूत संरचात्मक बदलावों को प्राथमिकता देनी होगी। आकड़ों के अनुसार तो देश की लगभग तीन चौथाई आबादी आज साक्षर हो चुकी है, किन्तु जिन शिक्षा संस्थानों से यह आबादी शिक्षा प्राप्त कर रही है वे शैक्षिक गुणवत्ता के विषय पर संस्थानों की विश्व रैंकिंग में बहुत ही निचले पायदान पर हैं। आज राजनीति का विषय बनकर बेरोजगार नवयुवकों की निष्क्रिय फौज तैयार करने में लगे हुए इन सरस्वती के मंदिरों का गुणात्मक उन्नयन एक गंभीर चुनौती है। वैसे तो शैक्षिक व्यवस्था में संरचनात्मक एवं गुणात्मक बदलाव लाने के लिए समय-समय पर विभिन्न आयोगों एवं समितियों का गठन किया गया तथा उनके द्वारा दी गयी सिफारिशों को लागू करने का प्रयास भी किया गया। किन्तु आजादी से अब तक 70 वर्ष बीत जाने एवं 74% साक्षरता दर प्राप्त कर लेने के बाद भी हमारी सम्पूर्ण शिक्षा अपने वास्तविक उद्देश्य को प्राप्त न करके मैकाले द्वारा निर्धारित किये गये उद्देश्यों को हासिल करने में लगी है। अत: संरचानात्मक परिवर्तन के लिए आवश्यक है कि व्यवस्था की अंतिम इकाई यानि कि प्रत्येक व्यक्ति की पहुँच गुणात्मक एवं उद्देश्यपूर्ण शिक्षा तक सुनिश्चित की जाये,

*प्रोफेसर, विशेष शिक्षा संकाय, डा. शकुंतला मिश्रा राष्ट्रीय पुनर्वास विश्वविद्यालय, लखनऊ (उ.प्र.)
*शोध छात्र, डा. शकुंतला मिश्रा राष्ट्रीय पुनर्वास विश्वविद्यालय, लखनऊ (उ.प्र.)

ताकि प्रत्येक व्यक्ति का विकास आपस में मिलकर समष्टि का रूप धारण कर सके। इस विषय पर समाजशास्त्री कार्ल मैनहीम ने जोर देते हुए कहा था कि स्वमानव की पुनर्रचना के बिना समाज की पुनर्रचना नहीं हो सकती है। अत: आवश्यक है कि शिक्षा के वास्तविक उद्देश्य को प्राप्त करने हेतु किये जा रहे संरचनात्मक परिवर्तनों के समक्ष आ रही आधारभूत समस्याओं को चिन्हित कर उनका समाधान सुनिश्चित करें ताकि गुणात्मक शिक्षा की उपलब्धता प्रत्येक व्यक्ति तक सम्भव हो सके।

शब्दावली– *शैक्षिक गुणवत्ता, संरचनात्मक परिवर्तन, वैश्वीकरण एवं शिक्षा संस्थानों की विश्व रैंकिंग।*

भारतीय सभ्यता का इतिहास जितना पुराना है शिक्षा के उतने ही पुराने ऐतिहासिक साक्ष्य भी यहाँ के साहित्य में मौजूद हैं। वैदिक काल से लेकर अंग्रेजों के आगमन तक भारतीय जनमानस ने शताब्दियों तक निरंतर तमाम उतार-चढ़ावों का सामना करते हुए अपने अस्तित्व को बनाये रखा। परन्तु अंग्रेजों के आगमन ने यहाँ की प्राचीन काल से चली आ रही व्यवस्था को बदलकर आधुनिक भारत की बुनियाद रखी। इस अंग्रेजी शिक्षा ने एक ओर जहाँ हमारे समाज में व्याप्त असमानतायें कम की हैं, वहीं दूसरी ओर इसने हमसे हमारी मूल चिंतन शैली छीन ली है। इसका परिणाम यह हुआ है कि हमारा शैक्षिक चिन्तन पश्चिम पर केन्द्रित हो गया है तथा आजादी के 70 वर्ष बीत जाने के बाद भी हम मानसिक गुलामी से नहीं निकल पा रहे हैं। कोठारी आयोग (1964-66) के अध्यक्ष दौलत सिंह कोठारी ने शिक्षा की गुणवत्ता में सुधार के विषय पर कहा था कि, ''देश के बुद्धिजीवियों के सम्मुख एक विकट समस्या है कि उनकी सोच का केंद्र यूरोप है। इस केंद्र को भारत में स्थापित करना होगा तभी अच्छी शिक्षा और देश का समग्र विकास संभव है।'' आज भारत के पास मानवीय संसाधनों के विशाल भंडार के रूप में 0-14 वर्ष की लगभग 27.71% और 15-64 वर्ष के बीच की 66.20% आबादी है जिसमें से लगभग आधी आबादी शैक्षिक संस्थानों के संपर्क में है। भविष्य में इस विशाल कार्यशक्ति का राष्ट्र निर्माण में बेहतर योगदान सुनिश्चित करने के लिए उन्हें वर्तमान में प्रदान किये जा रहे शिक्षा एवं प्रशिक्षण को उपयोगी एवं गुणात्मक रूप देना होगा। सुब्रमण्यम समिति (2015)[2] ने उपरोक्त विषय को संज्ञान में लेते हुए शिक्षा प्रणाली में गुणवत्ता वृद्धि हेतु बिना देर किये ही कौशल विकास एवं व्यवसायिक शिक्षा जैसे नवीन एवं व्यापक कार्यक्रमों को प्रारंभ किये जाने की सिफारिश भी की है।

24 दिसम्बर 2016 को जादवपुर विश्विद्यालय के वार्षिक दीक्षांत समारोह में ए.आई.सी.टी.ई. के अध्यक्ष डा. अनिल डी. सहस्त्रबुद्धे के अपने भाषण के दौरान कहे गये निम्नलिखित कथन कि, ''भारत को सभी संस्थानों में गुणवत्ता सुधारने और स्पर्धा तैयार करने के लिए रणनीति बनाने की जरूरत है'' और ''हमें शिक्षा में उत्कृष्टता का आदर्श और चुनौती तैयार करने के लिए लगातार कोशिश करने की जरूरत है जिससे कि विश्व के शीर्ष 100 संस्थानों में कम से कम 10-20 भारत के भी संस्थान आ सकें'', स्पस्टत: यह हमारी शिक्षा व्यवस्था में विद्यमान गुणवत्ता में रिक्ति को इंगित करते हैं। अत: शैक्षिक गुणवत्ता की मांग और पूर्ति में भारत में विकसित देशों की तुलना में भारी अन्तराल नजर आता है। उपरोक्त कथनों की प्रासंगिकता तब और भी बढ़ जाती है जब हमारे देश के शीर्ष शिक्षण संस्थान वैश्विक रैंकिंग में निम्न पायदान पर दिखाई देते हैं। एम.एच.आर.डी.के ''नेशनल इंस्टिट्यूशनल रैंकिंग फ्रेमवर्क'' के अंतर्गत निर्धारित की गयी ''इंडिया रैंकिंग 2017'' के अनुसार जो भारतीय शिक्षण संस्थान शीर्ष स्थानों पर थे (जैसे- IISc बंग्लौर-1st, IIT बॉम्बे- 3rd, IIT दिल्ली-5th, बनारस हिन्दू विश्वविद्यालय-10th और दिल्ली विश्वविद्यालय- 15th), उनकी रैंकिंगभी अंतर्राष्ट्रीय स्तर के विश्वविद्यालयों की तुलना में बहुत ही निम्न है। ''क्यू.एस. वर्ल्ड यूनिवर्सिटी रैंकिंग 207'' में विश्व की शीर्ष 200 यूनिवर्सिटी की सूची में सिर्फ 3 भारतीय शिक्षण संस्थान ही जगह बना सके हैं, किन्तु जो जगह बना भी सके हैं (जैसे- IIT दिल्ली-172th, IIT बंगलौर- 190th एवं IIT बॉम्बे- 179th) वो भी बिलकुल निचले पायदान पर हैं। इस रिपोर्ट के अनुसार देश के कुछ अन्य प्रमुख विश्वविद्यालयों की स्थिति और भी खराब है जिनमें बनारस विश्वविद्यालय और दिल्ली विश्वविद्यालय जैसे शीर्ष विश्वविद्यालय तो 400 के अन्दर भी स्थान नहीं प्राप्त कर सके हैं (एन.डी.टी.वी. इंडिया, जून 8, 2017)। शैक्षणिक संस्थानों की इस दशा की ही परिणति है कि आज देश के सक्षम और प्रतिभावान युवा विदेशों को पलायन कर रहे हैं। पिछले कुछ वर्षों में तो उच्च शिक्षा प्राप्त करने हेतु विदेश जाने वाले भारतीय विद्यार्थियों के नामांकन में विश्व स्तर पर तीव्रतम वृद्धि हुयी है। उच्च शिक्षा संस्थानों में सन 2000 में जहाँ 97 मिलियन विद्यार्थी नामांकित हुए थे, वहीं 2015 में यह आंकड़ा अनुमानित 263 मिलियन तक पहुँच गया। ओ.ई.सी.डी. के आंकड़ों के अनुसार 2011 में सम्पूर्ण विश्व में शिक्षा प्राप्त करने आये विदेशी छात्रों की सबसे बड़ी संख्या चीन, भारत और कोरिया की थी। विदेशों में शिक्षा ग्रहण करने जाने वाले विद्यार्थियों की संख्या के मामले में भारत, चीन के बाद दूसरे स्थान पर

था। इंडिया फास्ट फैक्ट्स 20157 के अनुसार यू.एस.ए. में शिक्षा प्राप्त करने गए विद्यार्थियों की संख्या के मामले में भारत आज दूसरा सबसे बड़ा देश बन गया है। आज वहाँ अध्ययन करने वाले प्रत्येक 6 विदेशी विद्यार्थियों में 1 भारतीय है। 2014–15 की तुलना में 15–16 में शिक्षा प्राप्ति हेतु यू.एस.ए. जाने वाले विद्यार्थियों की संख्या में अप्रत्याशित वृद्धि 24.9% हुयी है जबकि इस समय में अंतर्राष्ट्रीय वृद्धि दर सिर्फ 7.1% थी। इसके विपरीत यू.एस.ए. से भारत आकर शिक्षा ग्रहण करने आने वाले विद्यार्थियों के औसत में 3.3% की दर से कमी हुयी है।

प्रत्येक व्यवस्था में संरचनात्मक बदलाव उस समाज के हितधारकों की महत्त्वपूर्ण भूमिका पर आधारित होते हैं, जिनमें शिक्षक की भूमिका सर्वप्रमुख है। भारत के सन्दर्भ में जब भी व्यवस्थागत परिवर्तनोंकी आवश्यकता हुयी, उसे प्रबुद्ध जनों का कुशल नेतृत्व प्राप्त हुआ है। प्राचीनतम भारतीय शिक्षक परंपरा में हमारे पास चाणक्य के रूप में ऐसा उदाहरण हमारे पास है जिसने विशाल भारत के सबसे बड़े साम्राज्य की सत्ता को ही पलट दिया था। आधुनिक भारत में स्वतंत्रता आन्दोलन के समय हमारे शिक्षकों का एक विशेष योगदान रहा जिन्होंने अपने विद्यार्थियों के रूप में कुशल नेतृत्व पैदा किये। किन्तु भारत का सर्वाधिक सम्मानित समझा जाने वाला अध्यापन का क्षेत्र आज एन.सी.टी.ई., एन.सी.ई.आर.टी. और यू.जी.सी. जैसी संस्थाओं के स्थापित हो जाने के बाद भी हमारे युवाओं के लिए रोजगारजनक विषय के चयन में अंतिम बना हुआ है। आजकल शिक्षा की गुणवत्ता के बुनियादी आयामों के विषय में वैश्विक स्तर पर काफी सहमति है। सामान्यत: इस आधारभूत विषय के अंतर्गत निम्नलिखित पक्षों को सम्मिलित कर ध्यान दिए जाने पर जोर दिया जा रहा है: 1). अधिगमकर्ता– जोकि अच्छी तरह से स्वस्थ, पोषित और सीखने के लिए तैयार हैं तथा उन्हें उनके परिवारों और समुदायों द्वारा सीखने में सहायता की जाती हो, 2). वातावरण– जो स्वस्थ, सुरक्षित, रक्षात्मक और लैंगिक संवेदनशील हो तथा पर्याप्त संसाधन और सुविधाएँ सुलभ कराने में सक्षम हो, 3). विषयवस्तु– जो प्रासंगिक पाठ्यक्रम और बुनियादी कौशलों (जिनमें विशेष कर साक्षरता, आंकिक ज्ञान और जीवन कौशल तथा लिंग, स्वास्थ्य, पोषण, एच.आई.वी./एड्स से बचाव और शांति आदि) से संबंधित हो, 4). प्रक्रियाएं– जिसके माध्यम से प्रशिक्षित शिक्षक अच्छी तरह से प्रबंधित कक्षाओं और विद्यालयों में विद्यार्थी केंद्रित शिक्षण उपागम का प्रयोग करते हैं और सीखने को सहज बनाने और असमानता को कम करने के लिए कौशलों से युक्त आकलन को प्रयुक्त करते हैं और 5). परिणाम– जो ज्ञान,

कौशल और व्यवहार को शामिल करते हैं और शिक्षा के लिए राष्ट्रीय लक्ष्यों और समाज में सकारात्मक भागीदारी से संबद्ध हैं। प्रत्येक देश एवं समाज को अपनी व्यवस्था के अनुरूप इनके अतिरिक्त कुछ अन्य महत्त्वपूर्ण संरचनात्मक बिन्दुओं पर भी ध्यान देने की आवश्यकता हो सकती है। जैसाकि लियो टालस्टाय का मानना है कि, ''ज्ञान के लिए जो महत्वपूर्ण है वह मात्रा नहीं बल्कि गुणवत्ता है। अत: यह जानना महत्त्वपूर्ण है कि क्या आवश्यक है, क्या कमी है और क्या महत्त्वहीन है?'' क्योंकि अब तक हमारे देश में विभिन्न आयोगों एवं समितियों के द्वारा की गयीं संस्तुतियों के क्रियान्वित हो जाने के बाद भी शिक्षा की गुणवत्ता में ह्रास एक गंभीर विषय बना हुआ है। अत: शिक्षा की गुणवत्ता के विषय में भारतीय स्तर को भी वैश्विक स्तर पर पहुंचाने हेतु हमें निम्नलिखित कुछ प्रमुख बुनियादी बिदुओं पर तार्किक चिंतन करना होगा:

1. मूल भारतीय शिक्षा का उद्देश्य उपनिषद वाक्य ''सा विद्या या मुक्तये'' अर्थात जो मुक्ति दिलाती है वही विद्या है, पर आधारित था, जिसमें ज्ञान वृद्धि को केन्द्रीय स्थान प्राप्त था। शिक्षा के इस उद्देश्य ने ही प्राचीन भारत को विश्व की अग्रणी सभ्यताओं में खड़ा किया था। किन्तु आज हमारी शिक्षा ने अपने केंद्रीय विषय के रूप में ज्ञान की जगह सूचनाओं को दे दी है, जिसकी परिणति यह हुयी है कि साक्षर लोगों की संख्या के साथ ही साथ उनकी वेरोजगारी में भी तीव्रतम वृद्धि हुयी है। पहले ज्यादातर लोगों के पास कोई व्यावसायिक डिग्री नहीं होती थी किन्तु अपनी व्यवसायिक कुशलता के कारण वे जीवन में संतुष्टि का मार्ग खोज लेते थे। परन्तु आज व्यावसायिक प्रशिक्षण में डिग्री एवं डिप्लोमा होने के बावजूद युवा सड़कों पर चक्कर लगा रहा है। जहाँ आज तकनीकी विकास ने व्यक्ति की सूचनाओं तक पहुंच आसान की है, वहीं उसकी जिंदगी ज्ञान से शून्य कर दी है।
2. कक्षा में अध्ययन करायी जाने वाली विषय सामग्री विद्यार्थी के भविष्य निर्धारण में प्रमुख भूमिका अदा करती है। अत: प्रत्येक राष्ट्र के भावी नागरिकों के निर्माण के लिए आवश्यक है कि कक्षाओं में विद्यार्थियों को जो विषय-सामग्री अध्ययन करायी जाये उसका उद्देश्य व्यावहारिक हो। पर हमारी कक्षाओं में पढाई जाने वाली विषय-सामग्री सिर्फ सैद्धांतिक रह गयी है। आज कक्षाओं में एक ओर जहाँ शिक्षक, ''विद्या ददाति विनयं...'' (विद्या विनय को बढ़ाती है...) सिखा रहें हैं तो वहीं दूसरी ओर विद्यार्थियों के उपद्रव, आन्दोलन, लड़ाई-झगड़े और छात्र-राजनीति जैसे नकरात्मक विषय भी सामानांतर पैदा हो रहे हैं। प्राथमिक कक्षाओं में आदर्श

वाक्य के रूप में रटाया गया ''सर्वे भवन्तु सुखिनः सर्वे सन्तु निरामयाः...'', आज के जीवन में कितने युवाओं का आदर्श बन सका है। कहीं कोई एक-दो व्यक्ति ऐसे दिखते हैं जिन्हें राष्ट्र की या मानवीय मूल्यों की चिंता हो। औसतन सम्पूर्ण युवा भारत आज एक गला काट प्रतिस्पर्धा के दौर से गुजर रहा है। समाज का प्रत्येक व्यक्ति एक-दूसरे से बेहतर बनने में लगा है। आज विषय-सामग्री के चयन के साथ ही उसकी व्यावहारिकता के विषय में पुनर्विचार करने की आवश्यकता है।

3. प्रत्येक राष्ट्र के अस्तित्व के लिए उसके नागरिकों में परस्पर समानता एवं बंधुत्व के साथ-साथ प्रबल राष्ट्रवाद की भावना का होना आवश्यक है। किन्तु आज भारत में जगह-जगह व्यक्तिगत अस्तित्व राष्ट्रीय अस्तित्व को चुनौती दे रहा है। भारतीय इतिहास में ऐसे उदहारण भरे पड़ें हैं, जिनमें व्यक्ति विशेष के स्वार्थवश राष्ट्रीय अस्तित्व समय-समय पर खंडित हुआ है। अतः आज शिक्षण विषय-सामग्री में पुनः संरचनात्मक परिवर्तन की आवश्यकता है, क्योंकि शिक्षा ही एकमात्र माध्यम है जो व्यक्ति विशेष को यह अनुभूति करा सकती है कि उसका अस्तित्व सदैव ही उसके राष्ट्र की संकल्पना में निहित है न कि उसके बिना। इस विषय पर डा. कर्ण सिंह का विचार है कि, ''जिस शिक्षा में समाज और देश के कल्याण की चिंता के तत्व नहीं हैं वह कभी सच्ची शिक्षा नहीं कही जा सकती है।''

4. आज विद्यालयी शिक्षा से शिक्षक शिक्षा तक सभी आयामों में स्वयं सीखने की प्रवृति जिस तीव्रता के साथ बढ़ी है, वह निसंदेह व्यवस्था के अति महत्वपूर्ण विषय की ओर ध्यान आकर्षित करता है। इस परिवर्तन के स्वाभाविक रूप से दो कारण हो सकते हैं जिनमें प्रथम हमारे विद्यार्थियों की सीखने की प्रवृति में तीव्रतम सकारात्मक परिवर्तन हुआ है और हमारे संस्थान उनके स्तर के अनुकूल अपने को समायोजित नहीं कर पा रहें हैं एवं द्वितीय हमारी प्रणाली उनके स्तर से आगे की शिक्षा प्रदान कर रही है। विद्यार्थी सैद्धांतिक विषयों को रटकर सीखें यहाँ तक तो ठीक है किन्तु आज उन्हें तो प्रयोगात्मक विषयों को भी रटते हुए देखा जा सकता है। कुछ ऐसी ही प्रवृति बीसवीं सदी के मध्य में यूरोपीय देशों में भी विकसित हुई थी और उस तत्कालीन यूरोपियन शैक्षिक व्यवस्था पर तंज कसते हुए इवान इलिच ने 1971 में अपनी पुस्तक ''डी स्कूलिंग सोसाइटी'' में कहा था कि ''विद्यार्थी अपना अधिकांश सीखना शिक्षकों के बिना और प्रायः शिक्षकों के बाबजूद करतें हैं'', और उसके बाद से यूरोपीय देशों ने तो शिक्षा व्यवस्था में बदलाव कर वहां

की व्यवस्था को प्रबंधित कर लिया। परन्तु हमारे देश में गावों से शहरों तक सब जगह प्राथमिक से लेकर उच्च शिक्षा तक चाहे वे सामान्य शिक्षण संस्थान हों या व्यावसायिक, विद्यार्थियों में यह प्रवृति व्याप्त है। यह यहीं तक सीमित नहीं है बल्कि शिक्षक शिक्षा के संस्थानों में अपने चरम पर है और यही शिक्षक देश की कक्षाओं में निर्मित हो रहे भारत के भविष्य (युवाओं) को निर्मित कर रहे हैं।

5. देश में गुणवत्तापरक शिक्षा के लिए आवश्यक है कि शिक्षक गुणवान हों, किन्तु यहाँ तो शिक्षकों का प्रशिक्षण और चयन का आधार दोनों ही विवादास्पद है। ऐसे में जब हमारे शिक्षकों की योग्यता ही संदेहास्पद होगी तो उनसे यह आशा कैसे की जा सकती है कि वे गुणवत्तापरक शिक्षा प्रदान कर सकेंगे। किसी भी राष्ट्र के विकास का आधार शिक्षा है, पर शिक्षक ही दया दृष्टि पर निर्भर होकर चयनित होगा तो वो साहसी और प्रतिभावान नागरिकों का निर्माण कैसे कर सकेगा। हमारे शिक्षकों के चयन से आरक्षण को खत्म करना होगा। आरक्षण तो किसी को जीवन जीने का अवसर देने का प्रयास होता है ऐसे में किसी भी लिपिक जैसे पदों पर समझौता होना चाहिए न की राष्ट्र निर्माण करने वाले पदों के साथ। इन पदों पर भी आरक्षण देना ही है तो दिया जाये लेकिन प्रत्येक वर्ग के व्यक्ति की योग्यता के स्तर का निर्धारण एक समान और निश्चित करना होगा। अन्यथा भविष्य में वही होगा जैसाकि मेडिकल के क्षेत्र सामान्यत: देखा जाता है कि कोई भी किसी आरक्षित कोटे से सेवा में आये हुए डाक्टर से इलाज नहीं करवाना चाहता है, चाहे वह उसी वर्ग विशेष का ही क्यों न हो या फिर प्रत्येक वर्ग का शिक्षक अपने-अपने वर्ग के विद्यार्थी की शिक्षा पर ही ध्यान देगा।

6. आरक्षण सीमांत आबादी को मुख्य धारा से जोड़ने का प्रमुख माध्यम है, किन्तु स्वतंत्रता के बाद से इस व्यवस्था में समयानुसार परिवर्तन न किये जाने के कारण आज यह एक राजनीतिक विवाद का विषय बनकर रह गया है। इस समय लगभग सेवा के प्रत्येक क्षेत्र में इसे लागू किया जा चुका है। यहाँ हम इस विषय पर बात न करके कि किसे दिया जाय या किसे न दिया जाये, हम बात करना चाहते हैं कि शिक्षा के क्षेत्र में यह कैसे नुकसान पहुंचा रहा है? प्रत्येक वर्ग के लिए सीटों का बंटवारा जब एक निश्चित पद्धति के आधार पर किया जाता है और उसमें किसी अनारक्षित वर्ग के विद्यार्थी का प्रवेश अवरूद्ध है, तब उनके उत्तीर्ण करने का स्तर आरक्षित रखना कहाँ तक उचित है। हो सकता है कि कुछ समय तक उनके वर्ग में

रिक्तियां रह जाएँ, पर इसे रोकने का परिणाम होगा कि ये ऐसे विद्यार्थी जो इन वर्गों में आते हैं पहले ज्यादा प्रयास करेंगे और अपने शैक्षिक स्तर में सुधार करने का प्रयास करेंगे। शिक्षा तो हमेशा व्यक्ति के विकास की संभावनाओं में वृद्धि करती है नाकि ह्रास। हमें तो उन सम्भावनाओं में वृद्धि पर कुछ अधिक ही ध्यान देना चाहिए और यह वृद्धि तभी संभव है जब साध्य की सुलभता न करके साधन सुलभता करायी जाये। किन्तु वर्तमान की सम्पूर्ण व्यवस्था में साधन सुलभता के साथ-साथ साध्य को भी सुलभ बना दिया है। आज सभी सरकारी शैक्षिक संस्थानों में लगभग शिक्षा निरूशुल्क प्रदान की जा रही है, ऐसे में तब हमारे विद्यार्थियों को विकास की सीमा में आबद्ध करना कहाँ तक उचित है।

7. आज शिक्षक शिक्षा में प्रशिक्षण ले रहे युवाओं में से ऐसा प्रशिक्षणार्थी खोजना मुश्किल होता है, जिसका कि उस प्रशिक्षण कार्यक्रम को पूरा करने का उद्देश्य एक योग्य शिक्षक बनना हो। परिणामत: विद्यार्थियों के अध्यापकीय प्रशिक्षण में निम्न स्तरीय प्रार्थी एक बहुत ही गंभीर समस्या बन चुकी है। इसके साथ ही हमारे यहाँ अभी तक एक विश्वसनीय व्यवस्था स्थापित नहीं की जा सकी है जो कि अन्य विभागों की तरह ही शिक्षा विभाग में भी होने वाली नियुक्तियों में पारदर्शिता को सुनिश्चित कर सके। उसमें भी उत्तर प्रदेश की हालत तो ये है कि शायद ही शिक्षा के क्षेत्र में होने वाली कोई भी नियुक्ति प्रक्रिया न्यायालय का चक्कर लगाये बिना पूरी होती है ?

8. शिक्षा के अतिरिक्त आज कोई दूसरा क्षेत्र नहीं है जहाँ प्रशिक्षण प्राप्त करने के बाद लोग सड़कों पर मारे-मारे फिर रहे हों। देश में सेवाओं के सभी क्षेत्र अपनी आवश्यकताओं के अनुसार सबसे पहले रिक्तियां निकालते है, तब एक मानकीकृत परीक्षा के द्वारा योग्य लोगों का चयन कर उन्हें प्रशिक्षित करके नियुक्ति देते हैं। इन परीक्षाओं में उतने ही अभ्यर्थी उत्तीर्ण कराये जाते है जितने की विभाग को आवश्यकता होती है, उससे अधिक नहीं। किन्तु भारत में शिक्षा एक ऐसा क्षेत्र है जिसमें आवश्यकता से अधिक लोगों को प्रशिक्षित किया जाता है ताकि वे सड़कों पर रोजगार-रोजगार चीखते हुए इधर-उधर भटकें। आज प्राथमिक से लेकर उच्च शिक्षा स्तर तक की योग्यताधारी प्रशिक्षित युवा कहीं भी आसानी से भटकते हुए मिल जायेंगे। क्यों न हम एक ऐसी योजना बनाये जिसके अनुसार उतने ही लोग प्रशिक्षित किये जाएँ, जितने की समयानुसार शिक्षा विभाग को आवश्यकता हो।

9. प्रत्येक सभ्य समाज में शिक्षक का स्थान सर्वोपरि माना जाता है। गुरु शिष्य के मध्य संबंधों की भारतीय परंपरा में तो गुरु को ईश्वर से भी ऊँचा स्थान प्राप्त है। विकास के आधुनिक दौर में जब इन संबंधों को और भी सुदृढ़ होना चाहिए, तब विशाल समृद्ध विरासत होते हुए भी ये जरा-जीर्ण होती जा रही है। आजकल गुरु-शिष्य के मध्य संबंधों में श्रद्धा का इतना अभाव हो गया है कि शिक्षा संस्थानों में लगता ही नहीं है कि शिक्षा ली-दी जा रही है। वहां तो ऐसा प्रतीत होता है कि सिर्फ सूचनाओं का हस्तांतरण किया जा रहा है। आज शिक्षक एक अनुदेशक बन कर रह गया है। जबकि शिक्षा अर्जन में विद्यार्थी की अपने शिक्षक के प्रति श्रद्धा का होना एक अनिवार्य शर्त है। ऐसे ही विषय पर स्वामी विवेकानंद जी ने कहा था कि ''जिन देशों में इस प्रकार के गुरु-शिष्य के संबंध की उपेक्षा हुई है वहां धर्मगुरु एक वक्ता मात्र रह गया है। गुरु को मतलब रहता है अपनी दक्षिणा से और शिष्य को गुरु के शब्दों से, जिन्हें वह अपने मस्तिष्क में सिर्फ ठूंस लेना चाहता है।''

10. प्रत्येक समाज में शिक्षा के स्तर में वृद्धि के साथ-साथ व्यक्तिगत स्वतंत्रता की मांग भी बढ़ी है। अवश्य ही स्वतंत्रता व्यक्तिगत उन्नति का मार्ग प्रशस्त करती है, परन्तु इसके लिए व्यक्ति का आत्मनिर्भर बनना प्राथमिक शर्त है। आत्मनिर्भर बनने के लिए व्यक्ति का शिक्षित होना अनिवार्य है और अच्छी शिक्षा सदैव ही अच्छे शिक्षक के संपर्क में आने पर ही संभव है। अर्थात अच्छी शिक्षा के लिए अपने शिक्षकों पर ही निर्भर रहना होगा, और जब विद्यार्थी शिक्षकों पर निर्भर होकर शिक्षा प्राप्त करेंगे तो स्वतंत्रता जैसे शब्द बेमानी हैं। इस विषय पर प्रकाश डालते हुए स्वामी विवेकानन्द ने कहा था कि, ''पहले आज्ञा पालन करो आज्ञा देना स्वयं आ जायेगा। पहले सेवक बनना सीखो एक योग्य गुरु (स्वामी) स्वयं हो जाओगे।'' किन्तु हमारी आधुनिक व्यवस्था में शिक्षा में भी स्वतंत्रता की बात बड़े जोर शोर से उठ रही है और इसने आज विद्यार्थियों में स्वच्छंद होने की प्रवृत्ति बढ़ा दी है।

11. एक ओर जहाँ अन्य विकसित राष्ट्रों की तुलना में हमारे देश का शिक्षा पर होने वाला व्यय बहुत कम है, वहीं शैक्षणिक संस्थानों की विश्व रैंकिंग स्पस्ट करती है कि देश के शीर्ष शिक्षण संस्थान भी अपना दायित्व निर्वहन करने में असफल साबित हो रहे हैं। परिणामत: हमारे देश से एक बहुत ही बड़ी संख्या में प्रतिभावान युवा उच्चतर शिक्षा हेतु विदेशों को पलायन कर जाते हैं किन्तु उनकी शिक्षा पर होने वाले व्यय का भार देश की अर्थव्यवस्था पर पड़ता है। ये युवा शिक्षा ग्रहण कर

वापस लौट आयें तब भी ठीक है, इसके विपरीत ज्यादातर ये वहीं रह जाते हैं तथा वहां की अर्थव्यवस्थाओं की उन्नति में अपना विशेष योगदान देते हैं। इस प्रकार इनकी शिक्षा पर हुए राष्ट्रीय संपत्ति के व्यय के बदले देश को मिलता कुछ भी नहीं। इस विषय पर ओपन डोर रिपोर्ट 2008 में कैलिफोर्निया विश्वविद्यालय के प्राध्यापक निरंजन कुमार ने लिखा था कि, ''यदि भारतीय छात्रों द्वारा प्रतिवर्ष विदेश में खर्च की जाने वाली धनराशि देश में रह जाये तो उच्च शिक्षा की कायापलट होने में देर नहीं लगेगी।''

12. अधिक अंक प्रदान करने वाली आधुनिक परीक्षाओं ने तो विद्यार्थियों की प्रकृति ही छीन ली है। इनके परिणाम सभी विद्यार्थियों को योग्य साबित कर रहे हैं। परिणामों के आधार पर यह अनुमान लगाना आज कठिन है कि कौन से विद्यार्थी के अंक उसकी योग्यता के अनुरूप प्राप्त हुए हैं। इन विद्यार्थियों द्वारा अपने आगे के पाठ्यक्रमों का चयन करना बड़ा ही कठिन हो जाता है। एक ओर तो इन्हें यह अहसास होता है कि वे बहुत ही योग्य हैं क्योंकि उन्होंने परीक्षाओं में उच्च अंक प्राप्त किये हैं, वही जब अपने प्राप्तांको के गर्व में वे उच्च गरिमामय पाठ्यक्रमों में प्रवेश ले लेते हैं तो उन्हें पूर्ण करना एक चुनौती से कम नहीं होता है, फलतः भविष्य अधर में लटक जाता है। वहीं कभी-कभी अच्छे विद्यार्थी कम प्राप्तांकों के कारण उच्च पाठ्यक्रमों में प्रवेश से वंचित रह जाते हैं। इसका परिणाम यह होता है कि योग्य एवं कम प्रतिभावान दोनों ही प्रकार के विद्यार्थियों को समस्याओं का सामना करना पड़ता है।

13. विद्यालयों/विश्वविद्यालयों में वर्ष भर कक्षाओं में शिक्षकों के अध्यापन करने के बाबजूद भी परीक्षाओं में अधिकतर विद्यार्थियों की स्तिथि बड़ी ही दयनीय होती है। परीक्षा हॉल में लगभग प्रत्येक विद्यार्थी को इधर-उधर ताकते हुए देखा जा सकता है। अधिकांश विद्यार्थियों की यह आकांक्षा रहती है कि कहीं से नकल रुपी प्रकाश की एक किरण फूटे और उन्हें बुद्ध या महावीर जैसा ज्ञान प्रदान कर जाये। परीक्षा हाल में पूरे समय, प्रवेश करने से लेकर उत्तर-पुस्तिकाएं जमा कर लेने तक, कक्ष-निरीक्षक/ अध्यापक निरंतर निर्देश देते रहते हैं कि किसी को नकल नहीं करनी है, किसी को एक-दूसरे से बात नहीं करनी है, कोई परीक्षा विरोधी सामग्री लेकर कक्ष में नहीं बैठेगा और कोई शोर नहीं करेगा आदि। इन सभी निर्देशों का प्रवेश पत्र पर लिखा होने के बाबजूद भी आखिर ये सब क्यों किसी कक्ष-निरीक्षक/अध्यापक को निरंतर बोलना पड़ता है। सम्पूर्ण सत्र के दौरान

अध्ययन करने के बाबजूद भी हमारे विद्यार्थी परीक्षा में नकल के लिए इतने अधीर क्यों रह जाते है। शायद विकास की आधुनिक यात्रा में कहीं न कहीं हम देश को सर्व साक्षर बनाने के क्रम में एक रिक्ति छोड़ते जा रहे हैं, जोकि हमारी इस युवा पीढ़ी में कर्तव्य निष्ठा से दूरी को बढ़ावा दे रही है।

14. शिक्षा में इतनी अव्यवहारिकता आ गयी है कि समस्त बसुधा को अपना कुटुम्ब मानने वाले राष्ट्र के सभ्य नागरिक आज अपने पड़ोसी को भी नहीं जानते हैं। इनकी आवश्यकताओं ने इन्हें इतना व्यस्त कर दिया है कि इनके पास अपने स्वयं के लिए भी अवकाश नहीं है। समस्त दुनिया को मानवता का पाठ पढ़ाने वाली भारतीय सभ्यता के लोग आज अपनों की ही सहायता करने से डरते हैं। जिस समाज में कभी भूखे को भोजन कराना और प्यासे को पानी पिलाना पुण्य समझा जाता था, आज उस देश के सभी शिक्षित समाजों में भोजन तो दूर की बात है, पानी भी बिना पैसे के मिलना दुर्लभ है। जैसे-जैसे लोग शिक्षित होते जा रहे हैं उनका एकाकीपन बढ़ता जा रहा है। सोचने का विषय है कि हमारी व्यवस्था में विद्यार्थियों को किताबों के अनुसार सदैव यही पढ़ाया जाता है कि असहायों की मदद करो, किन्तु उच्च शिक्षा प्राप्त व्यक्ति भी आज इस योग्य नहीं हो पा रहा है कि वह अपनी ही मदद कर सके।

15. ईमानदारी, परोपकारिता, वीरता और कर्तव्यनिष्ठा जैसे विशेषकों से युक्त महापुरुषों की अनुपम गाथाओं की एक लम्बी परंपरा रखने वाली भारतीय संस्कृति में पलने वाला युवा आज पश्चिम को आत्मसात करने में लगा है। सामान्यत: देखा जा सकता है कि जैसे-जैसे राष्ट्र में साक्षरता दर में वृद्धि हुयी है, पश्चिमीकरण की प्रवृत्ति भी बड़ी है। सत्य है कि विकास की दौड़ में पश्चिम हमसे आगे निकल गया है, किन्तु इसका मतलब ये तो नहीं कि हम उसका अन्धानुकरण करें और अपनी ही संस्कृति और सभ्यता की आलोचना करें। आज प्राय: हर स्तर के व्यक्ति हमें आसानी से मिल जायेंगे जिनके मुख से ये कहना बिलकुल आसान है कि इस देश का कुछ नहीं हो सकता है। हर तरफ लोग यहाँ जोड़ तोड़ करते हुए मिल जायेंगे। आज जो ये प्रवृत्ति हमारे देश और समाज में पनपी है उससे कहीं न कहीं प्रबुद्धजनों और नीति नियंताओं की असफलता ही साबित होती है। कदाचित हमारे शिक्षक अपने आदर्शों को स्थापित करने में असफल हुए हैं या फिर हमारे नीति नियंताओं ने देश के प्रति अपनी जिम्मेदारी निर्वहन न करते हुए अपनी स्वार्थी राजनीति का फायदा लेने का प्रयास किया है। बड़ी विडम्बना है कि जिन युवाओं

को अपने समाज में व्याप्त बुराइयों को समाप्त करने का प्रयास करना चाहिए वे उनकी समाप्ति का प्रयास करने के स्थान पर उनकी आलोचना करने और यूरोपियन संस्कृति को अपना आदर्श बनाने में लगे हैं।

16. वैश्विक स्तर पर प्रत्येक राष्ट्र की पहचान उसके अपने विकास एवं विश्व को उसकी क्या देन रही है, से होती है। जिस प्रकार यूरोप ने तकनीकि विकास, यूनान ने वीरता और विद्वता के क्षेत्र में विश्व के विकास में अपनी सहभागिता सुनिश्चित की है, ठीक उसी प्रकार भारत का भी आध्यात्मिकता और विज्ञान के क्षेत्र में अतुलनीय योगदान रहा है। किन्तु आज के विश्व में हमारी पहचान भारी जनसंख्या एवं समस्त विश्व में रोजगार की तलाश में गये लोगों के द्वारा किये गए कार्य से हो रही है। संसाधनों से संपन्न हमारा देश अपने विकास के लिए आज अन्य देशों पर निर्भर है। इसका मूल कारण वर्षों तक पराधीन रहने के कारण हमारे द्वारा खोयी जा चुकी हमारी अपनी मूल चिंतन शैली है। इसी का परिणाम है कि आज विश्व की वो तमाम कौमें, जिनका कि कुछ वर्षों पहले कोई खास वजूद नहीं था विकास में हमसे आगे निकलकर सम्पूर्ण दुनिया का नेतृत्व कर रही हैं। यदि हम चाहते हैं कि आधुनिक विश्व का नेतृत्व करें तो हमें अपनी सोच में परिवर्तन करना होगा।

17. प्रत्येक व्यक्ति का शिक्षाकाल उसके जीवन का सबसे महत्त्वपूर्ण समय होता है। इस काल में अपने शिक्षकों की प्रेरणा से सीखे गये ज्ञान का वह जीवन पर्यन्त उपयोग करता है और अपने विकास के अनुरूप वह समाज व राष्ट्र के निर्माण में योगदान देता है। यह विषय शिक्षकों के मामले में और भी गंभीर हो जाता है, क्योंकि सामान्य व्यक्ति तो शिक्षाकाल में अर्जित किये गए ज्ञान का प्रयोग सिर्फ व्यक्तिगत उपयोग हेतु करता है पर एक शिक्षक इसे अपने शिक्षण के माध्यम से कई नई पीढ़ियों को लाभान्वित करता है। यह सिद्ध है कि शिक्षक प्रत्येक राष्ट्र के विकास की धुरी है। 1985 में प्रकाशित शैक्षिक नियोजन से सम्बन्धित दस्तावेज ''शिक्षा में चुनौतियां : एक नीतिगत दृष्टिकोण'' में तत्कालीन परिस्थिति पर प्रकाश डालते हुए कहा गया था कि ''हमारे यहाँ उत्तम पुस्तकों की रचना और शोध कार्य तो हो रहें है किन्तु उसके विपरीत निस्पृह अध्यापकों की संख्या बढ़ रही है। अत: अध्यापकों के दिशा-निर्देशन के लिए पाठ्यक्रम और अध्यापक शिक्षकों के निमित्त उपयोगी अभिक्षमताओं के संक्षिप्त परीक्षणों का प्रयोग चयन हेतु किया जाना चाहिए।'' इतना समय बीत जाने के बाद भी हमारे देश में शिक्षक-शिक्षा एवं शिक्षकों के चयन से सम्बंधित कारगर योजनायें नहीं बनायीं जा सकीं हैं। अत: यदि

हम चाहते हैं कि हमारे राष्ट्र का भविष्य उज्ज्वल हो तो हमें शिक्षकों के चयन एवं प्रशिक्षण पर पुनर्विचार करना होगा ताकि शिक्षा सिर्फ एक व्यवसाय न रहकर एक नैतिक जिम्मेदारी बन सके।

18. प्राय: जब भी बात शैक्षिक उन्नयन की होती है तो बजट एक बड़ा रोड़ा बनकर सामने खड़ा हो जाता है। कोठारी आयोग ने शिक्षा के संदर्भ में अपनी सिफारिशें रखते हुए 1966 में शिक्षा बजट को सम्पूर्ण बजट का 6% तक किये जाने की वकालत की थी जिसे अभी तक प्राप्त नहीं किया जा सका है। इसके साथ ही पिछले वर्षों की तुलना में औसतन इसमें कमी ही आयी है। जो शिक्षा बजट 1999 में सम्पूर्ण जी.डी.पी. का 4.4% था, 2017 में घटाकर 3.71% पर ला दिया गया है। देश की शिक्षा व्यवस्था में संसाधनों के अभाव को देखते हुए सुब्रमण्यम समिति 2015 ने इसे कुल जी.डी.पी. के 6% तक किये जाने पर जोर दिया है। शिक्षा पर खर्च के मामले में विश्व औसत जी.डी.पी. का 4.9% है तथा अधिकतर विकसित देश अपनी जी.डी.पी. का एक बड़ा हिस्सा लगभग 4.5 से 6% तक शिक्षा पर व्यय कर भी रहे हैं। ब्रिक्स ज्वाइंट स्टैटिस्टिकल पब्लिकेशन 2015 के अनुसार भारत अपने साथी देशों की तुलना में भी शिक्षा पर बहुत ही कम धन व्यय करता है। आज जब मलेशिया और केन्या जैसे छोटे-छोटे अर्थव्यवस्थाओं वाले देश शिक्षा पर कुल व्यय के मामले में अपनी जी.डी.पी. के 6% के स्तर को पार कर चुके हैं, हम शिक्षा पर व्यय के न्यूनतम मानक को पूरा किये बिना ही विश्व गुरु बनने का सपना देख रहे हैं।

स्वतंत्रता प्राप्ति के उपरांत शिक्षा में सुधार हेतु शैक्षिक समस्याओं पर विचार करने हेतु समय-समय पर केंद्र एवं राज्य सरकारों द्वारा शिक्षा सुधारों हेतु गठित की गयी समितियों एवं आयोगों की सिफारिशों के अनुरूप योजनायें बनाकर उन्हें लागू करने का सफलतम प्रयास किया गया है। जिसका परिणाम है कि 1947 में शैक्षिक अभाव का सामना करने वाला भारत आज विश्व में सर्वाधिक शैक्षिक संस्थानों वाला देश बन गया है। किन्तु शिक्षा में गुणवत्ता के विषय में विश्व स्तर पर अपना स्थान सुनिश्चित करने के लिए हमारे शिक्षाविदों को उत्पादन, तकनीकी, विज्ञान एवं अनुसन्धान जैसे विभिन्न क्षेत्रों को विकसित करने के साथ ही शिक्षा के उन आधारभूत सिद्धांतों पर भी ध्यान देना होगा जो उसकी अपनी प्रकृति के हैं। उपरोक्त वर्णित कुछ प्रमुख कारण हैं जिनके परिणामस्वरूप वैश्विक स्तर पर विकास की यात्रा में हम पीछे रह गए हैं। जिसकी परिणति यह हुयी है कि शिक्षित युवा भी आज सिर्फ अवसरवादिता की डाल पर बैठकर अपने विकास

की यात्रा पर आगे बड़ने का अवसर देख रहा है। आज शिक्षा ज्ञान अर्जित करने का माध्यम न रहकर सिर्फ रोजगार अर्जित करने का माध्यम बनकर रह गयी है। मूलत: वर्तमान की हमारी शिक्षा प्रणाली उधार की है जो अंग्रेजों की गुलामी के परिणामस्वरूप प्राप्त हुयी थी।फिर भी इस शिक्षा प्रणाली ने नए भारत के निर्माण में एक प्रमुख भूमिका अदा की और सामाजिक समानता एवं विज्ञान जैसे विषयों से देश में संरचनात्मक परिवर्तन कियाहै। किन्तु आज इसके कुछ नकारात्मक परिणाम भी सामने आ रहे हैं जो भारतीय संस्कृति एवं सभ्यता के मूल स्वरूप को चुनौती दे रहे हैं। अत: यदि हम चाहते हैं कि भारत की पहचान वैश्विक स्तर पर उसके अपने वास्तविक स्वरूप में हो तो वर्तमान व्यवस्था के साथ-साथ पुरातन भारतीय ज्ञान-विज्ञान के उन्नयन के कार्य को भी प्राथमिकता देनी होगी तथा साथ ही संसाधनों की सुलभता सुनिश्चित करने हेतु शिक्षा के क्षेत्र में होने वाले व्यय के प्रतिशत में भी वृद्धि करनी होगी। इससे युवाओं में शिक्षित होने के साथ ही अपने देश के प्रति सम्मान तो बढ़ेगा ही, साथ हीभारत से प्रतिभा पलायन भी रुकेगा।

संदर्भ

http://www.indexmundi.com/india/demographics_profile-html

http://www.nuepa.org/new/download/NEP2016/ReportNEP.pdf

http://www.business-standard.com/article/current-affairs/aicte-chief-sahastrabudhe-pitches-for-enhanced-quality-in-education-116122400454_1.html

इंडिया रेंकिंग 017, एनआइआरएफ, डिपार्टमेंट ऑफ हायर एजुकेशन, मानव संसाधन विकास मंत्रालय, भारत सरकार

https://khabar.ndtv.com/news/career/qs-world-university-rankings-2018-top-educational-institutes-in-india-1709258

द इंटरनेशनल मोबिलिटी आफ स्टूडेंट्स इन एशिया एंड द पैसिफिक (2013). पेरिस: यूनाईटेड नेशन्स एजुकेशनल, साइंटिफिक एंड कल्चर आग्रेनाइजेशन.

https://in.usembassy.gov/wp-content/uploads/sites/71/2016/11/2015-16-India-Fast-Facts-FINAL.pdf

https://www.unicef.org/education/files/QualityEducation.PDF

यादव, विरेन्द्र एस. एंड सिंह (2013): वैश्विकरण के दौड़ में उच्च शिक्षा का परिदृश्य, नई दिल्ली: ओमेगा पब्लिकेशंस पृ. 135

https://www.moneycontrol.com/news/business/economy/budget-2017-spendeducation-sector-seen-falling-short-1004364.html

परिप्रेक्ष्य
वर्ष 23, अंक 3, दिसंबर 2016

भारत में ज्ञान आधारित उद्योग एवं उच्च शिक्षा संस्थाओं का क्षेत्रीय वितरण तथा प्रादेशिक भिन्नताएँ

सुमित कुमार*

सारांश

उच्च शिक्षा के विस्तारीकरण एवं भारतीय अर्थव्यवस्था के उच्च ज्ञान आधारित अर्थव्यवस्था में परिवर्तित होने के प्रयास के मद्देनजर, वर्तमान शोध में भारत वर्ष में ज्ञान आधारित उद्योगों एवं उच्च-शिक्षा संस्थाओं के क्षेत्रीय वितरण एवं विकास को समझने का प्रयास किया गया है। साथ-ही-साथ, उच्च शिक्षा संस्थाओं एवं ज्ञान आधारित उद्योगों के क्षेत्रीय वितरण का प्रादेशिक भिन्नताओं (आर्थिक संदर्भ में) पर जो प्रभाव पड़ा है उसे भी समझने का प्रयास किया जा रहा है।

इस शोध पत्र के उद्देश्यों की पूर्ति हेतु मात्रात्मक अनुसंधान दृष्टिकोण (Quantitative research approach) तथा वर्णनात्मक एवं खोजी अनुसंधान प्रारूप को उपयोग में लाया गया है। पूर्णत: सहायक आंकड़ों के विश्लेषण हेतु Location Quotient, Geary's तथा Locational Giri-coefficient का प्रयोग किया गया है। यह शोध पत्र देश के सोलह महत्वपूर्ण राज्यों पर आधारित है। इस शोध-पत्र के परिणाम यह दर्शाते हैं कि यद्यपि ज्ञान-आधारित उद्योग स्थान-स्वतंत्र/स्वच्छंद उद्योग (foot-loose-industry) है तथापि उनका संकेन्द्रण उन्हीं राज्यों में है जहाँ उच्च-शिक्षा के संस्थाओं का पर्याप्त विकास हुआ है। साथ-ही-साथ ये देश के आर्थिक रूप से उन्नत प्रदेश भी हैं।

अध्ययन की पृष्ठभूमि

भारत वर्तमान सहस्त्राब्दि के पहले दिन से ही ज्ञान आधारित अर्थव्यवस्था बनने के लिए काफी प्रयासरत है। ज्ञान आधारित अर्थव्यवस्था से तात्पर्य एक ऐसी अर्थव्यवस्था से है

*शोध छात्र, न्यूपा, नई दिल्ली

जिसमें शिक्षा/ज्ञान व्यक्तियों, उद्यमों, संगठनों एवं समुदायों द्वारा आर्थिक और सामाजिक विकास को बढ़ावा देने के लिए अधिक प्रभावी ढंग से बनाया, अधिग्रहित, प्रेरित और उपयोग में लाया जाता है। (वर्ल्ड बैंक इंस्टीट्यूट, 2001सी; वर्ल्ड बैंक, 1998डी)। इस उद्देश्य की प्राप्ति हेतु देश में उच्च शिक्षा के विस्तारीकरण को बढ़ावा भी दिया गया। नेशनल नॉलेज कमीशन (2006) ने वर्ष 2020 तक भारत में उच्च शिक्षा के संदर्भ में सकल नामांकन अनुपात का लक्ष्य 30 प्रतिशत निर्धारित किया जो उस वर्ष (2006) में मात्र 11.6 प्रतिशत था (एआईएसएचई, 2005-06)। भारतवर्ष में उच्च शिक्षा के विस्तारीकरण को उच्च शिक्षा के अवसरों के विस्तार के रूप में परिभाषित किया गया है जिसके अनुषांगी - उच्च शिक्षा संस्थाओं में वृद्धि, छात्रों की संख्या में वृद्धि तथा उपलब्ध संस्थाओं में वृद्धि, छात्रों की संख्या में वृद्धि तथा उपलब्ध संसाधनों में वृद्धि आदि हैं (वर्गीज़, 2012)। जबकि ज्ञान आधारित अर्थव्यवस्था के विस्तार से तात्पर्य ज्ञान आधारित उद्योगों के विस्तार से है। ज्ञान आधारित उद्योग ऐसे उद्योगों को कहा जाता है जो तकनीकी एवं कुशल श्रमिकों पर तुलनात्मक रूप से ज्यादा आश्रित होते हैं। (ओईसीडी, 1996) ज्ञान आधारित उद्योग को विनिर्माण उद्योग की तुलना में स्वच्छंद उद्योग माना जाता है क्योंकि यह उद्योग स्थानीकरण के कारकों (कच्चा माल, परिवहन खर्च आदि) की अपेक्षा कुशल श्रमिकों पर आश्रित है। अतएव कुशल श्रमिकों का अनुगमन करती है (रोजरसन, 2001; ब्रीशन 2001, एलोसिडा, 2005)। कुशल श्रमिक सामान्यत: उच्च-शिक्षा के संस्थाओं से उपाधि/डिप्लोमा प्राप्त छात्र होते हैं। यद्यपि संख्या में कम लेकिन अनुभवजन्य अनुसंधान यह बताते हैं कि छात्र जिन स्थानों से अपनी शिक्षा प्राप्त करते हैं, उसी प्रदेश/इलाके में नौकरियाँ करना भी पसंद करते हैं। (Kodrzyek 2001; Perry 2001; Groen 2004; Crottliebs Joseph, 2006)। उपरोक्त के आधार पर यह कहा जा सकता है कि ज्ञान आधारित उद्योग तथा उच्च शिक्षा संस्थान दोनों को स्थानीयकरण में एक-दूसरे की उपस्थिति काफी सहायक सिद्ध हो सकती है।

एक-दूसरे के स्थानीयकरण में सहायक होने के अलावा ज्ञान आधारित उद्योग तथा उच्च शिक्षा संस्थान दोनों के संदर्भ में भारत में पर्याप्त मात्रा में अनुसंधान की कमी भी इन्हें वर्तमान शोधपत्र में शोध की विषयवस्तु बनाता है। उच्च शिक्षा तथा रोजगार के अवसर के मध्य का सह-संबंध शिक्षा के अन्य स्तरों की तुलना में ज्यादा है (Walker & Zhu, 2013) यह संबंध ज्ञान आधारित उद्योग में रोजगार के अवसरों के संदर्भ में और भी ज्यादा मजबूत मालूम पड़ता है, फिर भी उपरोक्त संदर्भ में शोध का अभाव वर्तमान शोध-पत्र में

उपरोक्त को विषयवस्तु बनाने के लिए प्रेरित करता है। भविष्य के आकलन के मद्देनजर भी यह शोधपत्र तथा इसकी विषयवस्तु काफी महत्वपूर्ण मालूम पड़ती हैं क्योंकि विगत कुछ दशकों से ज्ञान आधारित उद्योग जो सर्विस सेक्टर का महत्वपूर्ण अंग हैं उनकी भारतीय अर्थव्यवस्था में भागीदारी बढ़ती जा रही है। साथ ही उच्च शिक्षा के विकास के उद्देश्य से भारत सरकार ने राष्ट्रीय उच्च शिक्षा अभियान (RUSA 2013 से) चलाया है। यह अभियान देश में एक तरफ उच्च शिक्षा के विस्तारीकरण को बढ़ावा देती है तो वहीं दूसरी तरफ देश में उच्च शिक्षा के संदर्भ में व्याप्त पहुँच (Access), समता तथा गुणवत्ता से जुड़ी समस्याओं को भी कम से कमतर करने के लिए दृढ़प्रतिज्ञ हैं। (RUSA, 2013)

ऊपर लिखित तथ्यों के आधार पर वर्तमान शोधपत्र तथा इसकी विषयवस्तु काफी सामयिक तथा महत्वपूर्ण मालूम पड़ती है।

साहित्य की समीक्षा

ज्ञान आधारित उद्योग तथा उच्च शिक्षा संस्थान का विकास एवं वितरण परस्पर संबद्ध लेकिन अलग-अलग घटनाएँ हैं। इसी कारण से दोनों की विशिष्टताओं को बताने वाले साहित्य की अलग-अलग समीक्षा करके उनके मध्य के संबंधों को समझने का प्रयास किया गया है, जो निम्नलिखित है:

ज्ञान आधारित उद्योग

ज्ञान आधारित अर्थव्यवस्था, ज्ञान आधारित उद्योगों को बढ़ावा देते हैं। ऐसे उद्योग सेवा क्षेत्र की ऐसी विशिष्ट शाखा हैं जो जटिल बौद्धिक और ज्ञान-गहन गतिविधियों को शामिल करने वाली सेवाएँ प्रदान करती हैं तथा जिसके लिए उत्पादन की पूंजी कुशल मानव श्रम है। (Aslesen & Jakobson, 2007; Sheasmur & Dorobuse 2007) वर्ष 1996 में कनाडा उद्योग तथा कनाडा के व्यापार विकास बैंक ने उद्योगों के मान वर्गीकरण के आधार पर ज्ञान आधारित उद्योगों को दो भागों में बाँटा- पहली श्रेणी तथा दूसरी श्रेणी।

पहली श्रेणी में वैसे उद्योग जिसमें विज्ञान तथा तकनीकी का अपेक्षाकृत रूप से कम इस्तेमाल होता है। जैसे- दवा एवं चिकित्सा विनिर्माण, वाणिज्यिक एवं सेवा उद्योग मशीनरी, टेलीफोन उपकरण विनिर्माण, रेडियो और टेलीविजन प्रसारण और वायरलेस संचार उपकरण विनिर्माण इत्यादि।

दूसरी श्रेणी में विज्ञान एवं तकनीकी के सघन प्रयोग पर आधारित उद्योग जो तकनीकी विकास एवं अनुसंधान पर काफी जोर देते हैं। जैसे- परमाणु ऊर्जा उत्पादन,

जल–विद्युत ऊर्जा उत्पादन, विद्युत वितरण इकाईयाँ, पेट्रोलियम रिफाइनरीज इत्यादि।

कनाडा की इकाइयों की तरह ही डीईसीडी (Organisation for Economic Co-operation & Development) ने 1996 में ज्ञान आधारित उद्योग का वर्गीकरण तकनीकी आधार पर दिया है। उन्होंने ज्ञान आधारित उद्योग को तीन भागों में वर्गीकृत किया है।

(1) उच्च–तकनीकी आधारित उद्योग: ये अपने अनुसंधान विकास कार्य पर कुल आमदनी का 4 प्रतिशत या ज्यादा खर्च करते हैं।

(2) मध्यम तकनीकी आधारित उद्योग: ये अपने अनुसंधान एवं विकास पर कुल आमदनी का 1–4 प्रतिशत खर्च करते हैं।

(3) निम्न तकनीकी उद्योग: इसमें अनुसंधान एवं विकास पर अपनी आमदनी का 1 प्रतिशत से भी कम खर्चा करने वाले उद्योग आते हैं।

अंतर्राष्ट्रीय अनुभवों से पृथक, भारत के संदर्भ में (Singla, 2008) ज्ञान आधारित उद्योग को ज्ञान आधारित सेवा उद्योग तथा ज्ञान आधारित अनुसंधान एवं विकास उद्योग के रूप में वर्गीकृत किया है। ज्ञान आधारित सेवा उद्योग के अंतर्गत सूचना प्रौद्योगिकी एवं सूचना प्रौद्योगिकी सक्षम सेवाएँ आदि आती है जबकि ज्ञान आधारित अनुसंधान एवं विकास उद्योग के अंतर्गत बॉयोटैक्नोलॉजी, फार्मासेटिकल, चिकित्सा से जुड़ी तकनीकी एवं यंत्र, एयरोस्पेस आदि सम्मिलित हैं।

ज्ञान आधारित उद्योग को परिभाषित करने के बाद, उसकी विशिष्टताओं को समझना भी नितांत आवश्यक है। ज्ञान आधारित उद्योग की सबसे मूलभूत विशिष्टता उसका फुट–लूज होना है। विनिर्माण उद्योगों की तुलना में फुट–लूज होना है। फुट–लूज उद्योगों को एक ऐसे उद्योग के रूप में परिभाषित किया जाता है जिसके लिए स्थानीयकरण के कारकों एवं कच्चा माल (परिवहन खर्च) की महत्वता काफी कम होती है। (Alouso, 1972; Hoover, 1948) अतएव, ऐसे उद्योगों को कहीं भी स्थापित किया जा सकता है। यद्यपि ऐसे उद्योगों को स्थानीयकरण के पारम्परिक कारकों (परिवहन खर्च, कच्चा माल) के प्रति निरपेक्ष भाव रखते हैं तथापि ये वैसे स्थानों की तरफ आकर्षित एवं गतिशील होते हैं जहाँ कुशल–श्रमिकों की उपलब्धता व बहुलता होती है। (Flame[1984; Spiegelman, 1964)। दूसरे शब्दों में ऐसे उद्योग सामान्यत: सस्ते श्रमिक दर वाले स्थानों का पीछा करते रहते हैं। उनका यह स्वभाव ही उन्हें फुट–लूज उद्योग बनाता है।

भारतीय संदर्भ में (M.L. Pandit, 1985 ने) हरियाणा–पंजाब क्षेत्र में ऐसे उद्योगों के

अध्ययन के बाद यह निष्कर्ष निकाला था कि इस क्षेत्र में कुशल-श्रमिकों की उपलब्धता ही होजरी, कृषि-संबंधी उद्योगों, साईकिल उद्योग, मोटर-उद्योग आदि को फलने-फूलने का अवसर उपलब्ध कराती है।

कुशल श्रमिकों का पीछा करने के साथ-साथ ज्ञान आधारित उद्योग अन्य फुट-लूज इण्डस्ट्री की ही तरफ गुच्छित (Clustering) होने की प्रवृत्ति रखते हैं। गुच्छित से तात्पर्य एक ही जगह पर एकत्रित होने से है। (Malinberg & Maskell, 2001(Moller] 2014)। गुच्छित होने की वजह से उद्योग उद्योग कुशल-श्रमिक बाजार, सरकारी नीतियों, उद्योगों के लिए आवश्यक इन्फ्रास्ट्रक्चर (आधारभूत संरचनाओं), का समुचित रूप से दोहन कर अपना मुनाफा अधिकतम की सकते हैं। साथ ही तकनीकी के आदान-प्रदान या ज्वाइंट वेंचर्स के माध्यम से भी लाभान्वित हो सकते हैं (Lundrall, 1988; Lundrall 1993; Freeman, 1995; Edquist, 1997; Cooke & Margan, 1998; Cooke et.al. 2000; Cook, 2001; Ketels & Memedonic 2008)।

गुच्दित विकास के माध्यम से उद्योग ना सिर्फ अपना विकास करते हैं बल्कि उस स्थान-विशेष का भी विकास करते हैं। यह विकास रोजगार के अवसरों में वृद्धि, बेहतर व उच्च पारिश्रमिक दर, नये फर्मों के विकास व स्थापना की संभावना, बेहतर विकास-दर आदि के माध्यम से क्षेत्र विशेष में दृष्टिगोचर होता है। (Ketels & Memedovic, 2008) साथ ही ऐसे क्षेत्र ना सिर्फ उद्योगपतियों बल्कि नीति-निर्धारकों को भी विकास की दर एवं दिशा के निर्धारण के उद्देश्य से आकर्षित करते हैं (Rosenfeld 2002)।

उपरोक्त विशिष्टिताओं के अलावा ज्ञान आधारित उद्योग का एक महत्वपूर्ण चरित्र शहरी इलाकों में स्थापना से है। यह चारित्रिक गुण (Florida, 2002 के) क्रिएटिव केपिटल थ्योरी (Creative Capital theory) द्वारा आसानी से समझा जा सकता है। फ्लोरिडा के अनुसार ज्यादा क्रिएटिव श्रमिक जो सामान्यत: उच्च तकनीकी/शोध आधारित उद्योगों जैसा ज्ञान आधारित उद्योग में कार्यरत हैं, वे शहरी क्षेत्रों में उनसे जुड़ी सुविधाओं की वजह से रहना पसंद करते हैं। अत: कुशल श्रमिकों के अनुगमन की प्रवृत्ति की वजह से ज्ञान आधारित उद्योग का शहरों में पाये जाने के तीक्ष्ण संभावना है इससे शहरीकरण की प्रक्रिया जो भी विकास का द्योतक है को मजबूती प्रदान करती है।

अतएव यह कहा जा सकता है, ज्ञान आधारित उद्योग 'फुट-लूज' इण्डस्ट्री है। इनके शहरी केन्द्रों तथा कुशल श्रमिकों के अधिकता वाले क्षेत्रों की ओर आकर्षित होने की प्रवृत्ति उन क्षेत्रों में अनेक संभावनाओं को बलवती करता है।

ज्ञान आधारित उद्योग एंव उच्च शिक्षा

ज्ञान आधारित उद्योग के संदर्भ में पूर्व में किये गये अध्ययनों से यह स्पष्ट है कि उद्योग कुशल श्रमिक एवं तकनीकी नवाचारों पर आश्रित है साथ ही गुच्छित विकास की प्रवृत्ति भी रखता है। गुच्छित होने की प्रवृत्ति (Clustering) से एक ही प्रकार के उद्योग या अनेक उद्योगों का एकत्रीकरण एक क्षेत्र में होता है। लेकिन दोनों ही परिस्थितियों में बिना शंका के यह काफी आसानी से कहा जा सकता है कि कुशल श्रमिकों की माँग में बढ़ोत्तरी होगी। कुशल श्रमिकों की मांग वैसे स्थानों पर उच्च शिक्षा के संस्थानों को फलने-फूलने की पृष्ठभूमि प्रदान करेंगे। अर्थात उच्च शिक्षा के अवसरों का विस्तार होगा। यह बात इस तथ्य से समझी जा सकती है कि उच्च शिक्षा के ग्रेजुएट वैसी ही जगह पर नौकरियाँ करना पसंद करते हैं, जहाँ से वे अपनी उच्च शिक्षा पूरी करते हैं (Busch] 2007) इस प्रकार ज्ञान आधारित उद्योग के कलस्टरिंग की प्रवृत्ति उच्च शिक्षा के अवसरों के विस्तारीकरण को भी प्रभावित करती है। उच्च शिक्षा के अवसरों का विस्तार या तो नए शिक्षण संस्थानों के खुलने या उपलब्ध शिक्षण संस्थानों में अवसरों में वृद्धि या उपरोक्त दोनों माध्यम से होता है (Varghese 2012)।

इस प्रकार यह कहा जा सकता है कि ज्ञान आधारित उद्योग तथा उच्च शिक्षा के मध्य पारस्परिक संबंध है। लेकिन उच्च शिक्षा में मुख्यत: तकनीकी व व्यावसायिक शिक्षा के संस्थानों का ही विकास होगा क्योंकि शिक्षा की यह विधा का उद्देश्य अधिक से अधिक कुशल श्रमिक का उत्पादन करना होता है। साथ ही सरकारी संस्थानों की तुलना में गैर-सरकारी संस्थानों का ऐसे क्षेत्रों में संकेंद्रण की संभावना ज्यादा है क्योंकि सरकारी संस्थानों की स्थापना का उद्देश्य उच्च शिक्षा की क्षेत्रीय माँगों की पूर्ति करना है। जबकि गैर-सरकारी संस्थानों का उद्देश्य लाभ अर्जित करना।

उपरोक्त साहित्य की समीक्षा को ध्यान में रखते हुए निम्नलिखित अनुसंधान प्रश्नों का चुनाव किया जाता है।

(अ) क्या ज्ञान आधारित उद्योग तथा उच्च शिक्षण संस्थान के क्षेत्रीय वितरणों में कोई सह-संबंध है?

(ब) क्या ज्ञान आधारित उद्योग तथा उच्च शिक्षण संस्थान के क्षेत्रीय वितरणों में कोई सह-संबंध है?

अनुसंधान प्रश्नों को सुलझाने के उद्देश्य से उपर्युक्त परिचालन परिभाषाएं तैयार किए गए हैं जो निम्नवत् हैं।

(i) **ज्ञान आधारित उद्योग:** योजना आयोग द्वारा वर्गीकृत सेवा क्षेत्र उस शोध के लिए ज्ञान आधारित उद्योग को निरूपित करेगा क्योंकि ज्ञान आधारित उद्योग पूर्णत: सेवा क्षेत्र में सन्निहित है।

(ii) **उच्च शिक्षा संस्थान:** वैसी संस्थाएँ जो व्यवसायिक व गैर-व्यवसायिक दोनों प्रकार की सिर्फ स्नातक शिक्षा प्रदान करते हैं। स्नातक के बाद की शिक्षा को अध्ययन में शामिल किया गया है।

(iii) क्षेत्रीय भिन्नताएँ: मानव विकास सूचकांक में अंतरक्षेत्रीय भिन्नताएं प्रदर्शित करेगा।

कार्य प्रणाली एवं डाटाबेस:

प्रस्तुत शोध के अनुसंधान प्रश्नों को ध्यान में रखते हुए इस शोध-पत्र में मात्रात्मक शोध उपागम तथा खोजपूर्ण अनुसंधान डिजाइन का अनुपालन किया गया है। प्रस्तुत शोध-पत्र में देश के 17 बड़े राज्य आंध्र प्रदेश, कर्नाटक, महाराष्ट्र, हरियाणा, केरल, राजस्थान, तमिलनाडु, पंजाब, मध्य प्रदेश, गुजरात, उड़ीसा, उत्तर प्रदेश, छत्तीसगढ़, असम, पश्चिम बंगाल, झारखंड एंव बिहार में फैले ज्ञान आधारित उद्योगों तथा उच्च शिक्षा संस्थानों का अध्ययन किया गया है। ज्ञान आधारित उद्योगों का संकेंद्रण सेवा क्षेत्र का सकल राज्यीय घरेलू उत्पाद में योगदान तथा राज्य के कुल श्रम-शक्ति में भागीदारी के आधार पर वर्णित किया गया है। उच्च शिक्षण संस्थानों का संकेंद्रण उच्च शिक्षा ने जीईआर कालेजों का प्रति हजार आयु वर्ग जनसंख्या तथा कॉलेजों में उपलब्ध अवसरों प्रति हजार आयु वर्ग (18&-23 Yrs.) जनसंख्या पर उलब्धता के आधार पर वर्णित किया गया है। सेवा क्षेत्र पर आंकड़े योजना-आयोग तथा उच्च शिक्षा संस्थान पर आंकड़े (Selected Education Statistics 2004-05) तथा (Statistics of Higher and technical education 2009-10) से उद्धृत है। आंकड़े दो समय-सीमा 2004-05 तथा 2009-10 के लिए एकत्रित एवं विश्लेषित किये गए हैं।

प्रादेशिक वितरण में संकेंद्रण को समझने के उद्देश्य से Location Quatients का प्रयोग किया गया है। जबकि सह-संबंध को पता करने के लिए Greary's C को प्रयोग में लाया गया है।

Location Quatients (LQ):-

$$LQ_{ns} = \left(\frac{X_{ns}}{\sum_{L}^{S} X_{ns}} \Big/ \frac{\sum_{L}^{S} X_{ns}}{\sum_{L}^{S} \sum_{L}^{S} X_{us}} \right)$$

जहाँ, S = विशिष्ट संदर्भ (प्रस्तुत शोध में उच्च शिक्षा संस्थान/ज्ञान आधारित उद्योग

L = राज्य

X_{us} = उच्च शिक्षा संस्थान या ज्ञान आधारित उद्योग के संदर्भ में राज्य की भागीदारी

सामान्य शब्दों में LQ किसी विशिष्ट संदर्भ का किसी स्थान विशेष में योगदान तथा उसी सदर्भ में राष्ट्रीय औसत का अनुपात है। अत:, जब LQ>1 तब इसका अर्थ होता है कि वितरण संकेन्द्रित है जब LQ<1 असंकेन्द्रित वितरण को प्रदर्शित करता है। LQ=1 से यह अर्थ निकलता है कि वितरण राष्ट्रीय औसत के समकक्ष है।

LQ से पृथक जो दूसरी सांख्यिकीय विधि का इस्तेमाल किया गया है, विश्लेषण लिए, वो geary's C है।

$$\text{Geary's C} = \frac{n-1}{2s_0} \quad \frac{\sum_i \sum_j W_{ij}\left(x_i - x_j\right)^2}{\sum_j \left(x_i - \bar{x}\right)^2}$$

यह विधि सह-संबंध के विश्लेषण के लिए प्रयोग में आती है।

जहाँ, n = क्षेत्रीय इकाइयों की सं. (spatial units indexed by i&j)

ix = variable of interest

x = mean of x

W_{ij} = matrix of spatial weights with zeroes on the diagonal

so = sum of all W_{ij}

Geary's C स्थानिक सह-संबंध के अन्वेषण का एक माध्यम है। इसके परिणाम 0 से लेकर 1 से ज्यादा तक के मानों तक हो सकते हैं। 0 से 1 तक के परिणाम धनात्मक सह-संबंध को दर्शाते हैं जबकि 1 से ज्यादा के परिणाम ऋणात्मक सह-संबंध को दर्शाते हैं। 1 सह-संबंध की अनुपस्थिति बतलाता है।

आंकड़ों का विश्लेषण

आंकड़ों के विश्लेषण से यह स्पष्ट होता है कि वर्ष 2005-06 तथा वर्ष 2009-10 में आंध्र प्रदेश, कर्नाटक, महाराष्ट्र, हरियाणा, केरल, तमिलनाडु, पंजाब, मध्य प्रदेश, उड़ीसा तथा छत्तीसगढ़ के उच्च शिक्षा का संकेंद्रण था। गुजरात तथा राजस्थान में 2005-06 में संकेंद्रण नहीं था लेकिन 2009-10 में वह भी संकेंद्रित राज्यों में शामिल हो गया। उपरोक्त

राज्यों से पृथक उ.प्र., असम, बिहार, झारखण्ड, पं. बंगाल में दोनों वर्षों में उच्च शिक्षा को संकेंद्रण नहीं था। सबसे कम विस्तार बिहार में था।

ऐसे राज्य जहा उच्च शिक्षा का संकेंद्रण है उनमें से तमिलनाडु, पंजाब, केरल, हरियाणा, महाराष्ट्र, आंध्र प्रदेश, कर्नाटक में दोनों समयावधि में से कम-से-कम एक समयावधि में ज्ञान आधारित उद्योग का भी संकेन्द्रण रहा है। जबकि ऐसे राज्य जहाँ उच्च शिक्षा का संकेंद्रण नहीं है उनमें से एकमात्र पश्चिम बंगाल ही ऐसा राज्य है जहाँ ज्ञान आधारित उद्योग का संकेंद्रण पाया जाता है। दोनों चरों के मध्य का उपरोक्त संबंध उन दोनों के मध्य के धनात्मक सह-संबंध को इंगित करता है। इसकी पुष्टि Geary's C के परिणाम भी नीचे की तालिका के माध्यम से करते हैं।

वर्ष **चर**	**2004-05** **ज्ञान आधारित उद्योगा के क्षेत्रीय वितरण**	**2009-10** **ज्ञान आधारित उद्योग के क्षेत्रीय वितरण**
उच्च शिक्षा का क्षेत्रीय वितरण	0.876	0.541

Source: Calculated by researches

ऊपरलिखित तालिका से स्पष्ट है कि दोनों वर्षों में दोनों चरों के वितरण के मध्य धनात्मक संबंध है। लेकिन बढ़ते वक्त के साथ दोनों के संबंधों में काफी मजबूती आई है। दोनों चरों के सह-संबंध के निर्धारण के बाद दोनों चरों के वितरण के संबंधों के प्रादेशिक भिन्नता पर पड़ने वाले प्रभाव को समझने का भी प्रयास किया गया है। इसी उद्देश्य से मानव विकास सूचकांक को प्रादेशिक भिन्न के द्योतक के रूप में शामिल किया गया है। यद्यपि वर्तमान शोध में मानव विकास सूचकांक तथा ज्ञान आधारित उद्योग उच्च शिक्षा के मध्य में संबंधों को प्रत्यक्ष रूप से तो नहीं तथापि परोक्ष रूप से समझने का प्रयास किया गया है। अतएव सभी चरों (मानव विकास सूचकांक, उच्च शिक्षा एवं ज्ञान आधारित उद्योगों के प्रादेशिक वितरण) के संदर्भ में राज्यों का वरीयता क्रम निकालकर उनके मध्य के संबंधों के माध्यम से प्रभाव को समझने का प्रयास किया गया है।

	वर्ष 2004-05			वर्ष 2009-10		
वरीयता क्रम	मानव विकास सूचकांक	ज्ञान आधारित उद्योग	उच्च शिक्षा संस्थान	मानव विकास सूचकांक	ज्ञान आधारित उद्योग	उच्च शिक्षा संस्थान
01	केरल	पंजाब	आंध्र प्रदेश	केरल	केरल	आंध्र प्रदेश
02	पंजाब	केरल	केरल	तमिलनाडु	पं. बंगाल	केरल
03	तमिलनाडु	महाराष्ट्र	कर्नाटक	महाराष्ट्र	महाराष्ट्र	उड़ीसा
04	महाराष्ट्र	पं. बंगाल	तमिलनाडु	पंजाब	असम	पंजाब
05	हरियाणा	आंध्र प्रदेश	महाराष्ट्र	हरियाणा	तमिलनाडु	कर्नाटक
06	पं. बंगाल	तमिलनाडु	पंजाब	गुजरात	पंजाब	हरियाणा
07	कर्नाटक	हरियाणा	हरियाणा	कर्नाटक	हरियाणा	तमिलनाडु
08	गुजरात	कर्नाटक	गुजरात	पं. बंगाल	कर्नाटक	राजस्थान
09	आंध्र प्रदेश	मध्य प्रदेश	उड़ीसा	आंध्र प्रदेश	गुजरात	गुजरात
10	राजस्थान	असम	राजस्थान	उड़ीसा	आंध्र प्रदेश	महाराष्ट्र
11.	असम	गुजरात	मध्य प्रदेश	राजस्थान	झारखण्ड	छत्तीसगढ़
12.	म.प्र.	उ.प्र.	छत्तीसगढ़	असम	बिहार	म.प्र.
13.	उड़ीसा	उड़ीसा	पं. बंगाल	म.प्र.	राजस्थान	पं. बंगाल
14.	उ.प्र.	राजस्थान	उ.प्र.	उ.प्र.	उ.प्र.	झारखण्ड
15.	झारखण्ड	झारखण्ड	झारखण्ड	झारखण्ड	उड़ीसा	उ.प्र.
16.	छत्तीसगढ़	बिहार	असम	छत्तीसगढ़	म.प्र.	असम
17.	बिहार	छत्तीसगढ़	बिहार	बिहार	छत्तीसगढ़	बिहार

Source: UNDP, (2004-05), (2009-10).

तालिका से यह स्पष्ट है कि हर सूची में केरल, पंजाब कर्नाटक, तमिलनाडु, महाराष्ट्र हरियाणा एवं आंध्र प्रदेश प्रथम सात स्थानों पर लगभग स्थायी है, जबकि बिहार, छत्तीसगढ़, झारखण्ड, उ.प्र., मध्य प्रदेश आदि नीचे के स्थानों पर हर सूची में लगभग स्थायी थे। जो संभवत: इस बात को पूर्णत: ना सही लेकिन अंशत: सिद्ध करती है कि जिन राज्यों में ज्ञान आधारित उद्योग एवं उच्च शिक्षा का संकेन्द्रण हैं, वहाँ अन्य राज्यों की

तुलना में विकास की दशा एवं दिशा बेहतर है। उपरोक्त राज्यों के अलावा पं. बंगाल, उड़ीसा एवं असम की स्थिति हर सूची में अलग-अलग रही जो नये शोध को प्रेरित करते हैं।

निष्कर्ष:

विगत दशक के दो समय-बिन्दु पर उच्च शिक्षा तथा ज्ञान आधारित उद्योग के क्षेत्रीय वितरण के संकेन्द्रण देश के नीति-निर्धारकों के लिए सोचनीय बात है। ऐसा इसीलिए है क्योंकि 2013 से कार्यशील राष्ट्रीय उच्च शिक्षा अभियान के अनेक उद्देश्यों में से एक उद्देश्य इस संदर्भ में पहुँच को बढ़ावा देना है। इसके लिए क्षेत्रीय वितरण के संकेन्द्रण का विकेन्द्रीकरण नितांत आवश्यक है। क्षेत्रीय वितरण के संकेन्द्रण से पृथक, इस संदर्भ में उच्च शिक्षा एवं ज्ञान आधारित उद्योग के मध्य के बढ़ते धनात्मक सह-संबंध भी नीति-निर्माण के दृष्टिकोण से महत्वपूर्ण है क्योंकि पिछले कुछ दशकों से भारतवर्ष उच्च शिक्षा तथा ज्ञान आधारित उद्योग का विस्तारीकरण अनुभव कर रहा है। भविष्य में भी इन दोनों चरों के भारतवर्ष के विकास की दशा एवं दिशा निर्धारण की प्रबल संभावना है। अतैव, दोनों चरों के संकेंद्रण की वजह से क्षेत्रीय भिन्नता की संभावना से इंकार नहीं किया जा सकता है। प्रस्तुत शोध में भी यह तथ्य सामने आता है कि जिन राज्यों में उच्च शिक्षा एवं ज्ञान आधारित उद्योग का संकेन्द्रण है उनका मानव विकास सूचकांक भी ज्यादा है।

संदर्भ

एडेनरॉफ ए. तथा रॉनी डोनाल्डसन ''*कॉलेज-बेस्ड सर्विस इंडस्ट्री इन साउथ अफ्रीका यूनिवर्सिटी टाउन : द केस ऑफ स्टेलेनवॉस*'' *डिपार्टमेंट ऑफ ज्योग्राफी एंव इन्वॉयरमेंटल स्टडीज*, यूनिवर्सिटी ऑफ स्टेलेनवॉस, साउथ अफ्रीका

अलॉन्सो डब्ल्यू. (1971), ''*द लोकेशन ऑफ इण्डस्ट्री इन डेवलपिंग कंट्रीज*'' *इंडस्ट्रीयल लोकेशन एंड रीजनल डवपलमेंट*'' यूनाइटेड नेशंस, न्यूयार्क, 1971, पृ. 12-83

अलॉन्सो डब्ल्यू. (1972), ''*लोकेशन थ्योरी*'' *रीजनल डेवलपमेंट एंड प्लानिंग: अ रीडर, बाय जॉन त्रनेडमैन एंड विलियमसन* आलॉन्सो, एम.आर.टी. प्रेस, कैम्ब्रिज, 1964, *रिप्रिंटेड इन रीडिंग इन अरबन इकोनोमिक्स बाय मैथ्यू इडेल, द लोकेशनल क्रायटेरिया ऑफ फुटलूज फर्मस: अ फार्मल मॉडल*, मैकमिलन, न्यूयार्क, 1972, पृष्ठ 16-37।

अरबो, पी. एंड पी. बेनेनवॉर्थ (2007) ''*अन्डरस्टेंडिंग द रीजनल काउन्ट्रीब्यूसन ऑफ हॉयर एजुकेशन इन्स्टीटयूटसन: ए लिटरेचर रिब्यू*'', ओईसीडी, एजुकेशन वर्किंग पेपर्स, सं. 9, ओईसीडी पब्लिशिंग, http://dx.doi.org/10.1787/161208155312

बेयर चार्ल्स एंड टेरी ब्राउन (2006) ''*लोकेशन कोसेन्टस: ए टूल फॉर कम्पेरिंग रिजनल इण्डस्ट्री कम्पोजिशन्स*'', *इन्कॉन्स्टेक्स्ट इंडियाना'ज वोर्कफोर्स एंड इकानोमी*, मार्च 2006, http://www.eucontent.indiana.edu/2006march/pdfs/1-LQ.pdf)15/01/2017, 12%07IST

वॉसलॉफ एंड वाटर्स (2008) ''*स्टैटिक्स इन नट-सेल: डेकस्टॉफ क्विक रिफरेंस*'' ओ रैली मीडिया, इंक, 1005, ग्रेवेन्स्टीन हाइवे नार्थ, यूएसए

बार्यला, इ. एंड डोटरविच, डी. (2001), ''*स्टूडेंट माइग्रेशन डू सिगनिफिकेन्ट फैक्टर्स वेरी बाय रीजन?*'' एजुकेशन इकोनोमिक्स, 9(3), पृ. 260-280

बार्यला, इ. एंड डोटरविच, डी. (2006), ''*इन्स्टीट्यूशनल फोकस एंड नॉन रेसीडेंट स्टूडेंट इन्रॉलमेंट*'', इन्टरनेशनल जर्नल ऑफ एजुकेशनल मेंनेजमेंट, 20(4), पी. 239-248

बेकर, जी. (1964), ''*ह्यूमन कैपिटल: ए थ्योरिटिकल एंड इंपीरियल एनालइसिस विद स्पेशल रिफरेंस टू एजुकेशन*'', कोलम्बिया यूनिवर्सिटी प्रेस, न्यूयार्क

बेहर्मन, जे. एंड ई.टी.एल (1998) ''द *माइक्रोइकोनोमिक्स ऑफ कॉलेज च्वाइस, कैरियर्स एंड वेजेज; मेजरिंग* द *इम्पेक्ट ऑफ हायर एजुकेशन,*'' एनल्स ऑफ द अमेरिकन एकेडेमी ऑफ पॉलिटिक्स एंड सोशल साइंस, 559, पृष्ठ 12-23।

बेस्क, ओ. (2007) ''*वेन हैव ऑल द ग्रेजुएट जोन? इन्टरनल क्रॉस-स्टेट माइग्रेशन ऑफ ग्रेजुएट इन जर्मनी, 1984-2004*'' http://www.diw.defsoeppapers,13/02/15

कुक थॉमस जे. एंड पॉल बॉयले (2011) ''द *माइग्रेशन ऑफ स्कूल ग्रेजुएट टू कॉलेज*'', एजुकेशन इवैल्यूशन एंड पॉलिसी एनालाइसिस 2011, 33:202, डीओआई एलओ 31 02/2016237371139902

चन्द्रशेखर एस. एंड ए. शर्मा (2014), ''*इन्टरनल माइग्रेशन फॉर एजुकेशन एंड इम्प्लॉयमेंट अमॉग यूथ इन इंडिया*'', इंदिरा गांधी इन्स्टीट्यूट ऑफ डेवलपमेंट रिसर्च, मुम्बई, जनवरी 2014

हलमन सी. एंड अनुज उत्ज (2015) ''*इंडिया एंड नॉलेज इकॉनोमी: लिवरेजिंग स्ट्रैथ्स एंड ऑपरच्यूनिटीज*'', डब्ल्यू.आई. डेवलपमेंट स्टडीज, द वर्ल्ड बैंक, वाशिंगटन, डी. सी.

ग्राहम बी. एंड चार्ल्स पॉल (2010) ''*इज हायर एजुकेशन रियली लीड टू हायर इम्प्लायबिलिटी एंड वेजेज इन द आर.एम.आई.?*'' http://www.Pecificweb.org/docs/rhil/pdf/education%20and%20wages.pdf.

खरे, मोना (2014), ''*इम्प्लायमेंट, इम्प्लॉयविलीटी एण्ड हायर एजुकेशन इन इंडिया:* द *मिसिंग लिंग*'', हायर एजुकेशन फॉर फ्यूचर, 1(1), पृ. 30-62, द केरल स्टेट

हॉयर एजुकेशन काउंसिल, सेज पब्लिकेशन, नई दिल्ली

कुमार, सुमित (2014) ''*इन्टर-स्टेट माइग्रेशन फॉर हायर एजुकेशन: ए केस स्टडी ऑफ स्टूडेंट्स फ्रॉम बिहार इनॉल्ड इन युनिवर्सिटी ऑफ दिल्ली*'' अनपब्लिस्ड डिजरटेशन सबमिटेड टू न्यूपा, नई दिल्ली

मैकोम्बी जे.ए.एल. एंड मारटा आर.एम. स्प्रीफ्को (2014), ''*इकोनोमिक्स, ज्योग्राफी एंड कलेस्टर पॉलिसी, विद स्पेशल रिप्रेन्स टू कज़ाकिस्तान,* सीसीईपीडब्ल्यूपी 06-14 कैम्ब्रिज सेंटर फॉर इकोनोमिक्स एंड पब्लिक पॉलिसी, डिपार्टमेंट ऑफ लैंड इकोनॉमी, यूनिवर्सिटी ऑफ कैम्ब्रिज, जुलाई-2014

माल्मबर्ग ए. एंड पीटर मारकेल (2001), ''*द इलूसिव कॉन्सेप्ट ऑफ लोकेलाइजेशन इकोनोमिक्स : टूवार्ड ए नॉलेज-बेस्ड थ्योरी ऑफ स्पेशल कलस्टरिंग*'', इन्वॉयरमेंट एंड प्लानिंग, ए-2002, वाल्यूम 34, पृष्ठ 429-449।

नेशनल नॉलेज कमीशन (2009) ''*रिपोर्ट टू द नेशन 2006-2009* गर्वमेंट ऑफ इंडिया, नई दिल्ली।

आर्गनाइजेशन फार इकोनोमिक कार्पोरेशन एंड डवलपमेंट (1996) ''*द कोलेज इकोनोमी*'' ओईसीडी पेरिस।

आर्गनाइजेशन फार इकोनोमिक कॉर्पोरेशन एंड डवलपमेंट (2001) ''*ओईसीडी साइंस, टैक्नोलॉजी एंड इण्डस्ट्री स्कोरबॉर्ड : टूवार्ड ए कॉलेज बेस्ड इकोनोमी*'', ओईसीडी, पेरिस

प्लानिंग कमीशन (2001) ''*इंडिया एज ए नॉलेज सुपर पॉवर: स्ट्रटेजी फॉर ट्रांसफोरमेशन*'', प्लानिंग कमीशन, गर्वमेंट ऑफ इंडिया।

पण्डित एम. एल. (1985) ''*इंडस्ट्रियल डेवलपमेंट हरियाणा (डोमिनेशन ऑफ फुट-लूज इण्डस्ट्रीज)*'', बी.आर. पब्लिशिंग कॉरपोरेशन, दिल्ली, 1985

शिमरॉय, यू.ए. एंड उषा देवी (2009), ''*ट्रेन्ड एंड पैटर्न ऑफ माइग्रेशन : इन्टरफेस विथ एजुकेशन - ए केस ऑफ द नॉर्थ इस्टर्न रीजन*'', इन्स्टीट्यूट फॉर सोशियो इकोनोमिक चेंज, बैंगलोर।

सिंगला, डी.सी. (2008), ''*नॉलेज बेस्ड कलस्टर डेवलपमेंट इन इंडिया* : ऑपरच्युनिटी एंड चैलेंज, डिजरटेशन सबमिटेड टू एमआरटी, यूएसए।

सप्रा, आर. (2013) ''*हायर एजुकेशन एंड क्रॉस स्टेट माइग्रेशन*'', रूटगर यूनिवर्सिटी, यू.एस. ए., नवंबर 18, 2013

स्पाइगलमन आर.जी. (1964), ''*ए मेथड् फॉर इनालाइजिंग द लोकेशन करैक्टरस्टिक्स ऑफ फुट-लूज इण्डस्ट्री*'', लैण्ड इकोनोमिक्स युनिवर्सिटी ऑफ क्सिकॉन्सिस, पृ. 79-86।

ट्रॉन्टस्की, एल.जी. एंड ई.टी.एल (2001),''*हू विल स्टे एंड टू विल लीव*'' रिसर्च ट्राइंगल पार्क, एनसी: सदर्न ग्रोथ पॉलिसीज बॉर्ड

वगीज़ एन.वी. (2012), ''*हायर एजुकेशन एंड डवलपमेंट, इन्टरनेशनल इंस्टीट्यूट फॉर एजुकेशन प्लानिंग*, पेरिस, वाल्यूम-xxv, No.1, जनवरी-मार्च 2012, ISSN: 1564-2356

वर्ल्ड बैंक इन्स्टीट्यूट (2001) ''*चाइना एंड द नॉलेज इकोनोमी : सीजिंग द 21 सेंचुरी*'', वाशिंगटन डी.सी.

परिप्रेक्ष्य
वर्ष 23, अंक 3, दिसंबर 2016

कक्षा विमर्श में पाठ्यपुस्तकों की भूमिका

ऋषभ कुमार मिश्र*

कक्षा विमर्श और पाठ्यपुस्तकें

पाठ्यपुस्तकें कक्षा-विमर्श और अभ्यास की प्रकृति को तय करती हैं। ये केवल 'वस्तुनिष्ठ सत्य' को प्रस्तुत करने वाले तटस्थ लिखित माध्यम नहीं बल्कि एक सशक्त सांस्कृतिक माध्यम भी होती हैं जो ज्ञान, विचार, मूल्य और अभिवृत्ति आदि से युक्त होती हैं और तत्संबंधी संदेशों को संप्रेषित भी करती हैं (एप्पल, 1993)। ये पाठ्यचर्या के समरूप मानी जाती हैं तथा शिक्षण और आकलन का माध्यम भी होती हैं। इस प्रकार ये शिक्षक-शिक्षार्थी और सीखने की संस्कृति को दिशा भी देती हैं। विषय के चुनाव, प्रस्तुतीकरण के तरीकों, सीखने में शिक्षार्थी और शिक्षक की भूमिका, सीखने के अभ्यासों, गतिविधियों, सभी पर पुस्तक का प्रभाव देखा जाता है (इसिट, 2004)। इस प्रकार से पाठ्यपुस्तकें एक ऐसा लिखित दस्तावेज़ हो जाती हैं जो ज्ञान, ज्ञान निर्माण की प्रक्रिया, ज्ञान के साधन, जानने वाले की छवि, ज्ञान निर्माण में सीखने वाले की भूमिका इन सबके लिए महत्वपूर्ण होती हैं।

विद्यालय की पाठ्यचर्या की विषय सामग्री में ज्ञानानुशासन और विद्यार्थी के दैनंदिन ज्ञान, दोनों का समावेश किया जाता है जो कक्षा में प्रस्तुति या चर्चा के दौरान विद्यार्थी और शिक्षक जैसे सक्रिय अभिकर्ताओं द्वारा पुनः संदर्भित होता है। इस प्रक्रिया में शिक्षक, विद्यार्थी और पाठ के संबंध को दो दृष्टियों से देख सकते हैं (यंग, 2008)। पहली दृष्टि के अनुसार शिक्षक का कार्य पाठ को सरल करके विद्यार्थी के सम्मुख प्रस्तुत करना होता है। इस प्रक्रिया में शिक्षक की मान्यता और विश्वास के अनुसार विद्यार्थी की भूमिका तय होती है। इस परिप्रेक्ष्य के अनुसार कक्षा-विमर्श में पाठ उच्चतम स्तर पर है जिसे चुनौती नहीं दी जा सकती। शिक्षक का कार्य होता है कि कैसे इस पाठ को विद्यार्थी तक पहुँचाए? पाठ और पाठक की सापेक्षिक स्थिति में पाठक को

*सहायक प्रोफेसर, शिक्षा शास्त्र, महात्मा गांधी अंतरराष्ट्रीय हिंदी विश्वविद्यालय, वर्धा, महाराष्ट्र

एक अनुगामी ज्ञान-निर्माता माना गया है। पाठ्यपुस्तक के ज्ञान को ही अंतिम और श्रेष्ठ ज्ञान माना जाता है। इससे इतर किसी भी ज्ञान की सत्ता को स्वीकार नहीं किया जाता है। इस दृष्टि से पुस्तक को पढ़ना एक प्रकार की कुशलता का विकास है जो वस्तुनिष्ठ ज्ञान को आत्मसात् करने में मदद करता है (इसिट 2004)। दूसरे परिप्रेक्ष्य के अनुसार पाठ, कक्षा विमर्श में विद्यार्थी और शिक्षक के बीच मध्यस्थता करने वाला माध्यम है जो पूर्व निर्धारित न होकर निर्मित होता रहता है। यह विद्यार्थी-शिक्षक के पारस्परिक संबंध की प्रकृति को निर्धारित करता है। इस परिप्रेक्ष्य में शिक्षक केवल शिक्षण विधि का चुनाव करने वाला अभिकर्ता नहीं होता है बल्कि पाठ की मदद से वह विशेष प्रकार के संदेश भी संप्रेषित करता है। इस दृष्टि से पाठ्यपुस्तक भी एक सामाजिक-सांस्कृतिक प्रतीक है जो विशिष्ट उद्देश्यों को पूरा करने के लिए निर्मित की जाती है। उक्त पृष्ठभूमि में पाठ्यपुस्तक के विषयवस्तुगत विश्लेषण के द्वारा यह जाना जा सकता है कि इसमें शास्त्रों के ज्ञान और दैनंदिन ज्ञान को किस प्रकार समाविष्ट किया गया है? सीखने वाला कौन है? और वह कैसे सीखता है? इन प्रश्नों को ध्यान रखते इस लेख में हुए राष्ट्रीय पाठ्यचर्या की रूपरेखा-2005 (रा.पा.रू. 2005) के द्वारा सामाजिक विज्ञान के प्रस्तावित ज्ञानमीमांसकीय ढाँचे और शिक्षणशास्त्रीय निकशों के विशेष संदर्भ में कक्षा 8 की सामाजिक विज्ञान की पाठ्यपुस्तक 'संसाधन और विकास' का विषयवस्तु विश्लेषण किया गया है। पाठ्यपुस्तक के विश्लेषण के निम्नलिखित उद्देश्य थे:

- विद्यालय स्तर पर पाठ्यपुस्तक में वैज्ञानिक ज्ञान और दैनंदिन ज्ञान के पारस्परिक संबंध का विवेचन।
- रा.पा.रू.-2005, की अनुशंसा के संदर्भ में पाठ्यपुस्तक में व्यक्त मानव-प्रकृति संबंधों का विवेचन तथा इससे निर्मित विश्वदृष्टि का वर्णन।

भोग, भारद्वाज और मूलिक (2012) ने पश्चिम बंगाल, तमिलनाडु, उत्तर प्रदेश, गुजरात की राज्य सरकारों द्वारा प्रकाशित भूगोल की पुस्तकों और एन.सी.ई.आर.टी. द्वारा प्रकाशित भूगोल की पुस्तकों का आलोचनात्मक अध्ययन किया है। उन्होंने पाया कि ये पुस्तकें विकास को आधुनिकता और राष्ट्रीयता के पैमाने पर प्रस्तुत करती हैं। ये स्त्री और आदिवासियों जैसे हाशिए के समूहों का उल्लेख न के बराबर करती हैं। सभी पुस्तकों में कठिन तकनीकी शब्दों की भरमार है। हेडॉक (2015) ने एन.सी.ई.आर.टी. द्वारा प्रकाशित सामाजिक विज्ञान की पुस्तकों के प्रच्छन्न उद्देश्यों को सामने लाने का

प्रयत्न किया। इन्होंने कक्षा 9 से 12 तक की अर्थशास्त्र की पुस्तकों का विश्लेषण किया और बताया कि किस प्रकार जानबूझकर पूँजीवाद शब्द के प्रयोग से बचने की कोशिश की गई है। रामपाल और मंदर (2013) पुस्तकों के उदाहरणों का संदर्भ लेते हुए बताते हैं कि विज्ञान की पुस्तकों में भोजन का संबंध ऊर्जा के स्रोतों और शरीर को स्वस्थ रखने वाले माध्यम के रूप में है। भूख और खाद्य सुरक्षा जैसे सामाजिक पक्षों से इसे जोड़ने का प्रयास नहीं किया गया है। नवानी (2014)ने सामाजिक विज्ञान की पाठ्यपुस्तकों के विश्लेषण के आधार पर बताया कि इसमें भारत के उत्तर-पूर्व के लोगों के निरूपण न केवल अपर्याप्त हैं बल्कि रूढ़िग्रस्त भी हैं।

रा.पा.रू.-2005 और सामाजिक विज्ञान की पाठ्यचर्या व पाठ्यपुस्तकें

राष्ट्रीय पाठ्यचर्या की रूपरेखा-2005 पाठ्यचर्या सुधार की दृष्टि से एक महत्वपूर्ण दस्तावेज है। इसके अनुसार पाठ्यपुस्तकों के द्वारा बच्चों को केवल तथ्यात्मक जानकारी न देकर अंत:क्रिया के मौके देने चाहिए। पाठ्यपुस्तकों को विविध प्रकार के अभ्यासों और गतिविधियों से युक्त होना चाहिए। इनकी पाठ्यसामग्री ऐसी होनी चाहिए जिसका शिक्षक के न्यूनतम सहयोग के सहारे बच्चे स्वयं उपयोग कर पाएँ। इसके द्वारा बच्चों को स्वयं एवं सहपाठियों के साथ काम करने के मौके भी मिलने चाहिए।

रा.पा.रू.-2005 के अनुसार सामाजिक विज्ञान की विषयवस्तु का लक्ष्य सामाजिक सच्चाई की समीक्षात्मक जाँच तथा उस पर प्रश्न करते हुए विद्यार्थियों में आलोचनात्मक जागरूकता का संवर्धन होना चाहिए। इसमें सुझाया गया है कि-

- विद्यार्थियों के जीवन-संदर्भों के संबंध में नए आयामों और नए पहलुओं को जगह दी जा सकती है।
- विषयवस्तु में परीक्षा के लिए तथ्यों का अंबार लगाए जाने की बजाए उसकी संज्ञानात्मक समझ विकसित किए जाने की आवश्यकता है।
- इस बात पर ज़ोर दिया जाना चाहिए कि अवधारणाओं की समझ और सामाजिक-राजनीतिक यथार्थ के विश्लेषण की क्षमता के विकास का प्रयास हो, न कि केवल बिना व्याख्या के तथ्यों के रटने पर बल हो।
- भारत जैसे बहुलतावादी समाज में यह आवश्यक है कि सभी क्षेत्रीय और सामाजिक समूह, पाठय्पुस्तकों से अपने आप को जोड़ पाएँ।

- प्राासंगिक स्थानीय विषय-वस्तु सीखने सिखाने की प्रक्रिया का हिस्सा होनी चाहिए, आदर्श रूप में ऐसा स्थानीय संसाधानों पर आधारित गतिविधियों के माध्यम से किया जाना चाहिए।

पाठ्यपुस्तक में बतायी गयी इन अनुशंसाओं के समांतर रा.पा.रू.-2005 उच्च प्राथमिक स्तर पर इतिहास, भूगोल अर्थशास्त्र, समाजशास्त्र और राजनीतिविज्ञान से विषयसामग्री लेती है। सामाजिक विज्ञान के अंग के रूप में भूगोल का उद्देश्य पर्यावरण, संसाधन तथा स्थानीय से वैश्विक स्तर पर विभिन्न स्तरों के विकास के संदर्भ में आलोचनात्मक चिंतन को भूगोल शिक्षण का उद्देश्य स्वीकारती है।

'संसाधन और विकास' पाठ्यपुस्तक का विश्लेषण

चयनित पुस्तक 'संसाधन और विकास', एन.सी.ई.आर.टी. द्वारा वर्ष 2006 में प्रकाशित है। इसमें कुल छह अध्याय हैं– 'संसाधन', 'भूमि, मृदा जल', 'प्राकृतिक वनस्पति और वन्य जीव संसाधन', 'खनिज और शक्ति संसाधन', 'कृषि', 'उद्योग' और 'मानव संसाधन'। पाठ्यपुस्तक लेखन मंडल में सात सदस्यों का उल्लेख है। इनमें से तीन सदस्य विश्वविद्यालय के अध्यापक हैं। एक सदस्य एन.सी.ई.आर.टी. में प्रवक्ता हैं। अन्य दो दिल्ली विश्वविद्यालय में प्रवक्ता हैं। शेष चार सदस्य विद्यालय स्तर पर सामाजिक विज्ञान शिक्षण का कार्य करते हैं। समूह में केवल एक पुरुष सदस्य और छह महिला सदस्या थीं। पाठ्यपुस्तक में दी गयी भूमिका में रा.पा.रू. (2005) की दृष्टि और पुस्तक रचना के सहयोगियों के प्रति आभार ज्ञापन है। अन्य विषयों की भाँति शिक्षणशास्त्रीय परिप्रेक्ष्य का उल्लेख नहीं है। इनमें से दो दिल्ली के विद्यालय में नियुक्त हैं। एक बंगलौर से और एक आनंद (गुजरात) से है। उल्लेखनीय है कि पुस्तक मूलत: अंग्रेजी में लिखी गयी है जिसका अनुवाद हिंदी में किया गया है। पाठ्यपुस्तक के प्रत्येक अध्याय का प्रारंभ एक आख्यान से होता है। इसके बाद मुख्य विषय सामग्री को शीर्षकों और उपशीर्षकों में प्रस्तुत किया गया है। संबंधित चित्र, शीर्षक और उप-शीर्षक के सापेक्ष और उनके साथ दिए गए हैं। पारिभाषिक शब्दों को पाठ के बीच में कोष्ठक में दिया गया है। मुख्य गद्य में इस प्रकार के शब्दों को अलग रंग से दर्शाया गया है। इस प्रकार से पुस्तक में विषयवस्तु की प्रस्तुति में गद्य, रेखाचित्र, छवि चित्र, तालिका और मानचित्र आदि का प्रयोग है। प्रस्तुत अध्ययन में विश्लेषण हेतु लिखित सामग्री, चित्र और अभ्यास कार्यों को चुना गया।

विश्लेषण के लिए प्रत्येक अवतरण की ज्ञान संरचना के आधार पर कोडिंग की गयी। इसके अन्तर्गत दो वर्ग चुने गए-दैनंदिन ज्ञान और विषय ज्ञान। विषय ज्ञान के वर्ग को पुनः दो उपवर्गों में रखा गया। प्रथम वर्ग में उन अवतरणों को रखा गया जो संदर्भ युक्त थे, जिनमें उदाहरण की प्रधानता थी, जो आख्यानपरक थे, और विद्यार्थियों को भी उदाहरण या विचार प्रस्तुत करने का अवसर देते थे। द्वितीय वर्ग में उन अवतरणों को रखा गया जिनमें केवल परिभाषाओं, सूचनाओं और तथ्यों की प्रधानता थी। इसी प्रकार प्रत्येक अवतरण की कोडिंग अपेक्षित संज्ञानात्मक संक्रियाओं के संदर्भ में भी की गयी। इस आधार पर अवतरणों को तथ्यात्मक ज्ञान, संप्रत्यात्मक ज्ञान, प्रक्रियात्मक ज्ञान, और परासंज्ञानात्मक ज्ञान के वर्गों में रखा गया। कोडिंग की विश्वसनीयता सुनिश्चित करने के लिए शोधकर्ता और दो अन्य साथी शोधकर्ताओं ने अलग-अलग कोडिंग की। पुनः उनका परस्पर मिलान किया गया। अंतर होने की दशा में चर्चा के उपरांत अंतिम कोड को सहमति प्रदान की गई। चित्र-1 में कोडिंग प्रक्रिया का नमूना प्रस्तुत किया गया है:

भूपृष्ठ पर जिस प्रकार लोग फैले हैं, उसे **जनसंख्या वितरण का प्रतिरूप** कहते हैं। विश्व की जनसंख्या का 90 प्रतिशत से अधिक भाग भूपृष्ठ के लगभग 30 प्रतिशत भाग पर निवास करता है। विश्व में जनसंख्या का वितरण अत्यंत असमान है। कुछ क्षेत्र बहुत घने बसे हैं और कुछ विरल बसे हैं।

वर्गीकरण	वर्ग	
ज्ञान की संरचना	दैनंदिन ज्ञान	
	संदर्भ मुक्त विषय ज्ञान	✓
	संदर्भयुक्त सोदाहरण विषय ज्ञान	
विषय सामग्री और अपेक्षित संज्ञानात्मक संक्रियाएं	तथ्यात्मक	✓
	संप्रत्यात्मक	
	प्रक्रियात्मक	
	परासंज्ञानात्मक	

गहन निर्वाह कृषि में किसान एक छोटे भूखंड पर साधारण औज़ारों और अधिक श्रम से खेती करता है। अधिक धूप वाले दिनों से युक्त जलवायु और उर्वर मृदा वाले खेत में, एक वर्ष में एक से अधिक फसलें उगाई जा सकती हैं। चावल मुख्य फसल होती है। अन्य फसलों में गेहूँ, मक्का, दलहन और तिलहन शामिल हैं। गहन निर्वाह कृषि दक्षिणी, दक्षिण-पूर्वी और पूर्वी एशिया के सघन जनसंख्या वाले मानसूनी प्रदेशों में प्रचलित है।

वर्गीकरण	वर्ग	
ज्ञान की संरचना	दैनंदिन ज्ञान	
	संदर्भ मुक्त विषय ज्ञान	
	संदर्भयुक्त सोदाहरण विषय ज्ञान	✓
विषय सामग्री और अपेक्षित संज्ञानात्मक संक्रियाएं	तथ्यात्मक	
	संप्रत्यात्मक	
	प्रक्रियात्मक	✓
	परासंज्ञानात्मक	

चित्र-1: पाठ्यपुस्तक के अवतरणों की कोडिंग का उदाहरण

इस प्रक्रिया में कुल 158 अनुच्छेद चिन्हित किये गए जिनका ज्ञान की संरचना और संलग्न संज्ञानात्मक संक्रियाओं के आधार पर वर्गीकरण तालिका–1 में प्रस्तुत है।

तालिका–1
पाठ्यपुस्तक के अवतरणों का वर्गीकरण

वर्गीकरण के आयाम	वर्ग	अवतरणों की संख्या
ज्ञान की संरचना	दैनंदिन ज्ञान	12
	संदर्भ मुक्त विषय ज्ञान	82
	संदर्भयुक्त सोदाहरण विषय ज्ञान	64
विषय सामग्री और अपेक्षित संज्ञानात्मक संक्रियाएं	तथ्यात्मक	57
	संप्रत्यात्मक	67
	प्रक्रियात्मक	31
	परासंज्ञानात्मक	03

स्पष्ट है कि आलोच्य पाठ्यपुस्तक में विषयवस्तु की प्रस्तुति पर विशेष बल है। विषयवस्तु की विद्यार्थियों से संलग्नता के लिए तथ्यात्मकता और संप्रत्ययों की प्रस्तुति पर बल दिया गया है। विषय ज्ञान की प्रस्तुति में संदर्भ निरपेक्षता एक चुनौती है। संदर्भों और उदाहरणों के अभाव में पुस्तकों की पठनीयता प्रभावित होती है और वे विशेषज्ञ के सहयोग की अपेक्षा रखती है। तथ्यों और संप्रत्ययों की अधिकता इस मत की पुष्टि करती है। दैनंदिन ज्ञान विषयक अंश अन्य अंशों की तुलना में कम हैं। शिक्षण की दृष्टि से इसके दो निहितार्थ हैं। प्रथम, यह विषय प्रस्तुति की दृष्टि से परिप्रेक्ष्यों की बहुलता की कमी को दर्शाता है। द्वितीय, यह सीखने वाले की संदर्भ निरपेक्ष पहचान को भी दर्शाता है। इन कारणों के प्रभाव में विद्यार्थी की पाठ से संलग्नता प्रभावित होती है।

पाठ्यपुस्तक में दैनंदिन ज्ञान और वैज्ञानिक ज्ञान की प्रस्तुति

पाठ्यपुस्तक में विषयसामग्री की व्यवस्था का विश्लेषण करने से ज्ञात होता है कि दैनंदिन ज्ञान और वैज्ञानिक ज्ञान के पारस्परिक संयोजन से विषयसामग्री को निम्नलिखित क्रम में श्रृंखलाबद्ध किया गया है :

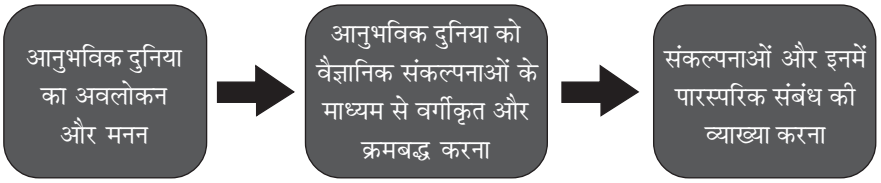

आनुभविक दुनिया का अवलोकन और मनन

प्रत्येक पाठ के आरंभ में गतिविधियाँ दी गई हैं। ये गतिविधियाँ विद्यार्थियों को अपने परिवेश के अवलोकनों को संज्ञान में लेने, अपने परिवेश से मिलती जुलती परिस्थिति को देखने, पढ़ने और उस पर विचार करने व प्रश्न पूछने की क्रियाओं से शुरु होती हैं। ये विद्यार्थी को एक सचेत अभिकर्ता मानते हुए उनके दैनंदिन ज्ञान को आमंत्रित करती हैं। इन गतिविधियों में विषय की तकनीकी और वैज्ञानिक पारिभाषिक शब्दावली का भी उल्लेख है। ये पारिभाषिक शब्द दैनंदिन व्यवहार में भी प्रयुक्त होते होंगे लेकिन उसके विषय आधारित अर्थ को संप्रेषित करने के लिए विशिष्ट लक्षणों से युक्त किया गया है। जैसे–*प्रत्येक वस्तु जिसका उपयोग आवश्यकताओं को करने के लिए किया जा सकता है, वह संसाधन है। कुछ वस्तुएँ उस समय संसाधन बनती हैं जब उनका कोई मूल्य होता है। इसका प्रयोग अथवा उपयोगिता इसे मूल्य प्रदान करती है (पृष्ठ–1)।* इस उदाहरण में 'संसाधन' एक दैनिक बोलचाल का शब्द है लेकिन इसे पारिभाषिक बनाने के लिए उपयोगिता और मूल्य होने के विशेषक को इससे जोड़ा गया है। इसी प्रकार 'मृदा' की परिभाषा देखें– ''*पृथ्वी के पृष्ठ पर दानेदार कणों के आवरण की पतली परत को मृदा कहते हैं। पृष्ठ–13)*'' यहाँ मृदा की संकल्पना के विशेषक के रूप में कण और परत का उल्लेख है। विषय ज्ञान आधारित अवतरणों के विश्लेषण से ज्ञात होता है कि पाठ्यपुस्तक में तकनीकी या अकादमिक शब्दावली का विकास तीन तरह से किया गया है। प्रथम, संज्ञा के रूप में प्रकट किया गया है। जैसे–खनिज, जनसंख्या, संसाधन, भूमि, उद्योग, श्रम आदि। द्वितीय, विशेषक में निहित अर्थ वाले शब्द दिए गए हैं। जैसे–कच्चा माल, भौतिक पर्यावरण, विनिर्माण उद्योग, जल संसाधन और मानव संसाधन आदि। तृतीय, प्रक्रियावाची शब्दों का प्रयोग किया गया है। जैसे–खनन, प्रवेधन, आखनन, वनोन्मूलन आदि। इन तकनीकी और वैज्ञानिक पदों पर बल देने के लिए उसे मोटे और अलग रंग के अक्षरों से लिख दिया गया है। इनके साथ इनकी परिभाषा और व्याख्या को भी प्रस्तुत किया गया है। एक बार परिभाषा या व्याख्या के बाद परिघटना को तकनीकी शब्द के रूप में ज्ञानानुशासन का अंग बना दिया गया है।

पाठ्यपुस्तक की परिभाषाओं का अवलोकन करें तो ज्ञात होता है कि ये परिभाषाएँ विगनेल, मार्टिन और इगिन्स (1993) के द्वारा निदर्शित निम्नांकित परिभाषा-प्रकारों से साम्य रखती हैं:

प्रक्षेपण (Projection)– जहाँ परिभाषा का कोई प्रस्तोता है। यह परिभाषा 'हम' जैसे सर्वनामों के माध्यम से प्रकट होती है। यह कर्ता कई बार कर्मवाच्य के रूप में अप्रत्यक्ष रूप से मौजूद रहता है। जैसे-

''प्राकृतिक वनस्पति और वन्य जीवन केवल स्थलमंडल, जलमंडल और वायुमंडल के बीच एक सँकरे क्षेत्र में पाया जाता है जिसे हम जैवमंडल कहते हैं।' (पृष्ठ-17)''

''प्रत्येक वस्तु जिसका उपयोग आवश्यकताओं को पूरा करने के लिए करते हैं वह संसाधन है। (पृष्ठ-1)''

''सदाहरित वन उन्हें कहते हैं जिन वनों के वृक्ष किसी भी ऋतु में अपनी पत्तियाँ एक साथ नहीं गिराते। (पृष्ठ-19)''

व्याख्या (Elaboration)– जहाँ परिघटना की पहचानने योग्य विशेषताओं के आधार पर व्याख्या की जाती है:

''उद्योग का संबंध आर्थिक गतिविधि से है जो वस्तुओं के उत्पादन, खनिजों के निष्कर्षण अथवा सेवाओं की व्यवस्था से संबंधित है। (पृष्ठ-50)''

''खनिज आधारित उद्योग प्राथमिक उद्योग हैं जो खनिज अयस्कों का उपयोग कच्चे माल के रूप में करते हैं।(पृष्ठ-51)''

संवर्धन (Enhancement)– यह अवधारणा का विस्तृत प्रक्रियात्मक विवेचना होती है।

''जैवमंडल में सभी जीवित जातियाँ जीवित रहने के लिए एक दूसरे से परस्पर संबंधित और निर्भर रहती हैं। इस जीवन आधारित तंत्र को पारितंत्र कहते हैं। (पृष्ठ-19)''

उपर्युक्त प्रकारों के अतिरिक्त कुछ परिभाषाएँ 'रूपकों' के रूप में भी दी गई हैं। ये परिभाषाएं दैनिक या लोकप्रिय संस्कृति के शब्दावली से उपजती हैं:

''पेट्रोलियम और इससे बने उत्पाद को काला सोना कहा जाता है''। *(पृष्ठ-31)*

''कोयला अंतर्हित धूप के रूप में जाना जाता है।'' *(पृष्ठ-31)*

इन दोनों उदाहरणों में संसाधन के मूल्य के कारण उनके लिए विशेषण का प्रयोग किया गया है। इसे ही उनकी पहचान या परिभाषा माना गया है। परिभाषाओं की एक प्रवृत्ति और उभरकर सामने आती है। ये किसी परिघटना को पहचानने के संकेतक से युक्त है :

''अजैव संसाधन निर्जीव वस्तुएं होती हैं जबकि जैव संसाधन सजीव होते हैं। *(पृष्ठ-3)*'' ''अनवीकरणीय संसाधन वह है जिनका भंडार सीमित है। *(पृष्ठ-4)*''

आनुभविक दुनिया का वर्गीकरण और व्यवस्थापन

परिघटना को पहचानने के संकेतकों, प्रक्रियाओं, विशेषकों आदि के परिचय के उपरांत, इन्हें समूहों और वर्गों में रख कर वर्गीकृत और क्रमबद्ध किया गया है। इसके बाद विश्व और भारत के संदर्भ में उनका वितरण प्रस्तुत किया गया है। समूहों और वर्गों में रखने का कार्य दो प्रकार से किया गया- उपवर्ग बनाकर वर्गीकरण और संघटकों के आधार पर। उदाहरण के लिए अध्याय 1 में देख सकते हैं कि संसाधनों का उपवर्गों में वर्गीकरण किया गया है। अध्याय 3 में देख सकते हैं कि खनिज के संघटन के आधार पर वर्गीकरण किया गया है।

आनुभविक दुनिया की व्याख्या

वैज्ञानिक शब्दावली द्वारा आनुभविक दुनिया को परिभाशित करने के बाद परिघटना की व्याख्या और उसका विश्लेषण किया गया है। इस व्याख्या के दौरान वैज्ञानिक शब्दावली का प्रयोग वास्तविक दुनिया के अवलोकनों को समझने के लिए किया गया है। जैसे- *''कृषि आधारित उद्योग कच्चे माल के रूप में वनस्पति और जंतु आधारित उत्पादों का प्रयोग करते हैं (पृष्ठ-51)।''* यहाँ कच्चे माल के अन्तर्गत वनस्पति और जंतु उत्पादों को रखकर उसके माध्यम से कृषि आधारित उद्योग के एक आयाम को समझाया गया है। उनमें कार्य-कारण संबंध स्थापित किया गया है। जैसे- *''औद्योगिक प्रदेश का विकास तब होता है जब कई तरह के उद्योग एक दूसरे के निकट होते हैं और वे अपनी निकटता का लाभ आपस में बाँटते हैं (पृष्ठ-52)''।* यहाँ पर औद्योगिकी प्रदेश के विकास कारण की अवस्थिति की अनुकूलता है। इसी प्रकार परिघटनाओं या प्रक्रियाओं के पारस्परिक संबंधों और उनके निहितार्थों का उल्लेख किया गया है जैसे- *''प्राकृतिक वनस्पति और वन्य जीवन केवल स्थलमंडल, जलमंडल और वायुमंडल के बीच एक सँकरे क्षेत्र में पाया जाता है जिसे हम जैवमंडल कहते हैं। जैवमंडल में सभी जीवित जातियाँ जीवित रहने के लिए एक दूसरे से परस्पर संबंधित और निर्भर रहती हैं। इस*

जीवन आधारित तंत्र को पारितंत्र कहते हैं (पृष्ठ-19)''। उनमें अन्तनिर्हित प्रक्रियाओं की चर्चा की गई है। जैसे- *''भूमि का उपयोग विभिन्न कार्यों के लिए किया जाता है, जैसे- कृषि, वानिकी, खनन, सड़कों और उद्योगों की स्थापना। साधारणत: इसे भूमि उपयोग कहते हैं। भूमि का उपयोग भौतिक कारकों द्वारा निर्धारित किया जाता है, जैसे-स्थलाकृति, मृदा, जलवायु, खनिज और जल की उपलब्धता। मानवीय कारक जैसे- जनसंख्या और प्रौद्योगिकी भी भूमि उपयोग प्रतिरूप के महत्वपूर्ण निर्धारक हैं। सामुदायिक भूमि समुदाय के स्वामित्व में होती है। सामान्य रूप से इसका उपयोग समुदाय से संबधित व्यक्तियों के लिए किया जाता है जैसे-चारा, फलों' या औषधीय बूटियों को एकत्रित करना (पृष्ठ-12)''*।

इस उदाहरण में देख सकते हैं कि किस प्रकार एक दैनंदिन परिघटना को भूगोल की शब्दावली द्वारा निरूपित किया गया है। ऊपर आनुभविक दुनिया की व्याख्या में दो सीमाएं भी दिखाई पड़ती हैं। इन व्याख्याओं में प्राय: प्रक्रियाओं और परिस्थितियों का उल्लेख तो है लेकिन अभिकर्ता और सहभागियों पर ये किंचित मौन सी हैं। समूहवाचक संज्ञा जैसे- 'लोग' या जाति वाचक संज्ञा जैसे- 'मनुष्य' के द्वारा दर्शाया गया है। ऐसे कथन सार्वभौमिकता और सामान्यीकरण को प्रस्तुत करते हैं लेकिन वे कारण के मूल कर्ता या पक्ष को छिपा भी देते हैं। वैज्ञानिक शब्दों की बहुलता द्वारा आनुभाविक दुनिया को विषय ज्ञान में प्रस्तुत करने की चेष्टा है।

पाठ्यपुस्तक में मानव-प्रकृति संबंध निरूपण

रा.पा.रू.-2005, में भूगोल को सामाजिक विज्ञान का अंग माना गया है और इसका विशेष उद्देश्य मानव-प्रकृति के संबंधों के संदर्भ में आलोचनात्मक चिंतन का विकास माना गया है। इस उद्देश्य के सापेक्ष पाठ्यपुस्तक का विश्लेषण करते हुए यह जानने का प्रयास किया गया कि इसमें मानव-प्रकृति के संबंध को लेकर निहित अन्तर्दृष्टि क्या है? यह पाया गया कि पुस्तक का प्रारंभ एक उपयोगितावादी दृष्टि के साथ होता है-*''प्रत्येक वस्तु जिसका उपयोग आवश्यकताओं को पूरा करने के लिए किया जा सकता है, वह संसाधन है (पृष्ठ-1)''*। आवश्यकताओं को पूरा करने के स्रोत की स्थापना करते हुए बताया गया है कि प्राकृतिक संसाधन प्रकृति से प्राप्त नि:शुल्क उपहार हैं। लेकिन ये नि:शुल्क उपहार का नियंता और उपभोगकर्ता मनुष्य है:

''लौह अयस्क उस समय तक संसाधन नहीं था जब तक लोगों ने उससे लोहा बनाना नहीं सीखा था। लोग प्राकृतिक संसाधनों का उपयोग पुल, सड़क, मशीन और

वाहन बनाने में करते हैं। हम जैसे लोग प्राकृतिक संसाधनों का उपयोग करके मानव निर्मित संसाधन बनाते हैं।'' (पृष्ठ 4)

इस उदाहरण में नियंता की सर्वव्यापकता को 'हम लोग' कहकर संबोधित किया गया है। इसी प्रकार प्राकृतिक पर्यावरण के बजाय मानव निर्मित पर्यावरण को उभारा गया है। लेकिन मानव निर्मित पर्यावरण के जिन पक्षों को उभारा गया है वे मानव की समायोजनकारी प्रवृत्तियों को प्रस्तुत करने के बजाय उसकी 'आक्रमणकारी' प्रवृत्तियों को प्रस्तुत कर रहे हैं जिसका मुख्य हथियार 'प्रौद्योगिकी' है। इस उपयोगितावादी दृष्टि को पुष्ट करने का कार्य अगले अध्यायों में देख सकते हैं जो उपयोग, लाभ-हानि और वितरण की विषयवस्तु से युक्त है। मानव की परियोजनाओं जैसे बाँध निर्माण आदि के नकारात्मक प्रभावों की चर्चा का उल्लेख नहीं है। मनुष्य को किस प्रकार उपयोगितावादी दृष्टि और आक्रमणकारी प्रवृत्ति के प्रतिनिधि के रूप में चित्रित किया गया है, इसका एक उदाहरण प्रस्तुत है-

> *''लोग और अधिक संसाधन बनाने के लिए प्रकृति का सबसे अच्छा उपयोग तभी कर सकते हैं जब उनके पास ऐसा करने का ज्ञान, कौशल तथा प्रौद्योगिकी हो।'' (पृष्ठ 4)*

स्पष्ट है कि यदि मानव को भी 'प्रकृति की देन' मान लें तो भी वह पूर्ण नहीं है। उसे पूर्ण करने या संसाधन का उत्पादक और उपभोक्ता बनाने के लिए मानव निर्मित संसाधनों जैसे- शिक्षा, स्वास्थ्य और प्रौद्योगिकी से युक्त करना होगा। यह दृष्टि पुस्तक में देखी जा सकती है। यह भी उल्लेखनीय है कि पूरी पुस्तक में एक भी उदाहण ऐसा नहीं है जहाँ प्रौद्योगिकी ने मानव-पर्यावरण की सहजीविता में भूमिका निभाने की संभावना दिखायी हो।

प्रकृति के नि:शुल्क उपहार किसके लिए है? इस सवाल का उत्तर अध्याय-2 की विषय सामग्री के समांतर खोजें तो एक नए प्रकार की समस्या आती है। जैव मंडल के अन्य जीव प्रकृति के संसाधनों के उपभोगकर्ता नहीं है। उसके अधिकारी के रूप में केवल मनुष्य को चित्रित किया गया है। इस प्रकार का निरूपण मानव केंद्रित विश्वदृष्टि को ही पोषित करता है। यदि विकास और प्रौद्योगिकी के लिए प्रयुक्त संदर्भों के सापेक्ष देखे तो ज्ञात होता है कि अधिकांशत: नगरों मे रहने वाले औद्योगिक समाज के मानव को दिखाया गया है। देशज समुदायों, उनके ज्ञान, प्रौद्योगिकी और प्रकृति के साथ संबंधों पर पुस्तक पूर्णतया मौन है। प्रत्येक अध्याय में संसाधनों की समस्या, पर्यावरण अवनयन

की समस्या को उभारा गया है। इन समस्याओं का कारण उपभोग की प्रवृत्ति को न बताकर जनसंख्या वृद्धि जैसे कारण बताए गए है। इसी तरह पाठ्यपुस्तक में वनस्पति, खनिज, कृषि, उद्योग और जनसंख्या इन सभी के वितरण को भौगोलिक और प्राकृतिक अनुकूलताओं के संदर्भ में इस प्रकार से विवेचित किया गया है कि ''जहाँ जो है उसका कारण प्रकृति है''। इसका उदाहरण है:

> *''अनुकूल स्थलाकृति, मृदा और जलवायु कृषि क्रियाकलाप के लिए उपयुक्त है। किसे आप मानचित्र में देख सकते हैं कि कृषि क्रियाकलाप उन्हीं प्रदेशों में संकेन्द्रित है जहाँ फ़सल उगाने के लिए उपयुक्त कारक विद्यमान हैं।'' (पृष्ठ-40)*
>
> *''विशुवत वृत्त के दक्षिण की अपेक्षा विशुवत वृत्त के उत्तर में बहुत अधिक लोग रहते हैं।'' (पृष्ठ-67)*

स्पष्ट है कि उक्त दृष्टि उन भिन्नताओं को, जो विभेद और असमानता का आधार बन सकती है, का मूल कारण प्रकृति को सिद्ध कर देती है। सांस्कृतिक दृश्यभूमियों के निर्माण और विकास में केवल प्राकृतिक तत्वों को ही महत्व प्रदान करती है और सामाजिक-सांस्कृतिक पक्षों की प्राकृतिक तत्वों के साथ जटिल अंत:क्रिया की उपेक्षा है। उदाहरण के लिए भारत के संदर्भ में यदि उत्तर का वृहद् मैदान जनसंख्या के रहने योग्य है तो गहन जीवन निर्वाह कृषि से इसका क्या संबंध है? पर पुस्तक मौन है। पुस्तक एक ओर बताती है कि गहन निर्वाह कृषि में परंपरागत तरीके से छोटी जोतों पर खेती की जाती है। पुन: यह बताती है कि इन प्रदेशों की जनसंख्या अधिक है। लेकिन ये दोनों किस प्रकार संबंधित हैं या किस प्रकार एक दूसरे को प्रभावित कर रहे हैं? इस पर प्रकाश नहीं डाला गया है। प्रौद्योगिकी ने प्रकृति के नि:शुल्क उपहार को जलविद्युत में बदला इसका उल्लेख है लेकिन बाँधों के निर्माण से पैदा हुई विस्थापन की समस्या का उल्लेख नहीं है।

प्राकृतिक आपदाओं के संदर्भ में प्रकृति को इसके उत्तरदायी और नियंता के रूप में दर्शाया गया है। उदाहरण के लिए, अध्याय-2 में भूस्खलन की आपदा का उल्लेख किया गया है। इस विवरण में भूस्खलन और इसकी परिभाषा दी गई है। इसे 'लंबे समय तक भारी वर्षा का प्रतिफल' बताया गया है। इसी अध्याय में वनों में आग लगने की आपदा का उल्लेख है। इसके तीन कारण दिए हैं– पहला कारण प्राकृतिक-तड़ित झंझा का बताया गया। इसका अगला कारण मानव की लापरवाही और सोद्देश्य वन को जलाना बताया गया है। अध्याय 5, उद्योग में दो विपदाओं की चर्चा की गई है। प्रथम

यूनियन कार्बाइड कीटनाशी फैक्ट्री की दुर्घटना है और द्वितीय चीन के गाओकायो के गैस कूप में विस्फोट। इन दोनों विपदाओं का कारण तकनीकी की विफलता को बताया गया है। आपदाओं का उल्लेख और प्रस्तुति इस रूप में की गयी है या तो इनका कारण प्राकृतिक है या तकनीकी की विफलता। इस प्रकार से प्रकृति के अति शोषण और तकनीकी के अनियोजित उपयोग को आपदाओं के कारण से बाहर कर दिया गया है।

संसाधनों को मानव के लिए दर्शाया गया है न कि शेष अन्य जीवों के साथ साझी संपत्ति के रूप में। जब मानव ही श्रेष्ठतम संसाधन है तो स्वाभाविक है कि उसकी इच्छा और क्रियाकलाप सर्वोपरि होंगे। इसके प्रतीक रूप में ही यह भी उल्लेख है कि-''लोग सदैव पर्वतों और पठारों की तुलना में मैदानी भागों में रहना पसंद करते हैं (पृष्ठ-68)।'' इस उदाहरण में देख सकते हैं कि मानव पर्यावास प्रकृति प्रदत्त सुविधाओं का परिणाम नहीं है बल्कि मानव का चुनाव है। यह चुनाव 'सदैव' रहता है। इस पर भी बल दिया गया है। लेकिन इस चुनाव का अधिकारी या अभ्यासकर्ता कौन होगा? इस पर स्पष्ट मत व्यक्त है- जो ''ज्ञान, कौशल और प्रौद्योगिकी'' से युक्त होगा। इसी के समांतर पुस्तक जनसंख्या के आकार को प्राकृतिक वृद्धि के रूप में प्रस्तुत करती है लेकिन इसकी सीमा का उल्लेख इस परिभाषा के साथ करती है कि-''किसी देश की जनसंख्या कितनी भी अधिक हो उसका देश के आर्थिक विकास के स्तर से कुछ अंतर नहीं पड़ता।'' (पृष्ठ-71)

पाठ्यपुस्तक के प्रत्येक अध्याय में मानव जनसंख्या का उल्लेख किया गया है। इन अवतरणों का विश्लेषण दर्शाता है कि जनसंख्या वृद्धि एक सार्वभौमिक सत्य है। यह वृद्धि अनेक प्रकार की समस्याओं को जन्म देती है। लेकिन इनके विकल्प या सुझाव पर पुस्तक मौन है। नीचे दिए गए उदाहरणों के माध्यम से देखा जा सकता है कि किस प्रकार से पर्यावरण से जुड़ी समस्याओं के लिए जनसंख्या वृद्धि को कारण माना गया है:

'बढ़ती हुयी जनसंख्या की आवश्यकता को पूरा करने के लिये विविध प्रकार की फसलें उगायी जाती हैं।' (पृष्ठ- 42)

'कृषि विकास का संबंध बढ़ती जनसंख्या की बढ़ती मांग को पूरा करने के लिये कृषि में उत्पादन को बढ़ाने की दिशा में किये जानेवाले प्रयासों से है।' (पृष्ठ-46)

'इन खनिजों के भण्डार सीमित हैं। विश्व की बढ़ती जनसंख्या जिस दर से इनका उपयोग कर रही है वह इनके निर्माण की दर से कहीं अधिक है। इसलिए ये शीघ्र ही समाप्त होने वाले हैं।' (पृष्ठ-31)

'जनसंख्या और उनकी माँग सदैव बढ़ती रहती हैं। लेकिन भूमि की उपलब्धता सीमित है। बढ़ती जनसंख्या तथा इसकी बढ़ती माँगों के कारण वन भूमि और कृषि योग्य भूमि का बड़े पैमाने पर विनाश हुआ हैं।' (पृष्ठ–12)

इन कथनों में एकांगी दृष्टि को देख सकते हैं कि किस प्रकार से जनसंख्या वृद्धि एक प्राकृतिक और स्वाभाविक परिघटना के रूप में प्रस्तुत है। जिन समस्याओं को इससे जोड़कर दर्शाया गया है कि क्या वह संसाधनों के नियोजन, प्रबंधन और विकल्पों के अभाव का परिणाम नहीं हो सकती है! इस प्रकार के कथन विद्यार्थी में एकांगी सोच पैदा करेंगी जो उनकी इस मान्यता को पुनर्बलित करेगा कि वनों का नाश, पर्यावरण प्रदूषण या शहरी क्षेत्रों में झोपड़पट्टियों आदि का विकास और इनसे जुड़ी समस्याएं जनसंख्या वृद्धि के कारण पैदा हुई है न कि वृहदतर सामाजिक–आर्थिक–सांस्कृतिक और राजनैतिक घटनाओं के कारण। ऐसी विरोधाभासी स्थिति और भी विचारणीय हो जाती है जब प्रौद्योगिकी और तकनीकी पर भरोसा व्यक्त किया जा रहा हो। प्रौद्योगिकी का प्रयोग विकास का रास्ता है जो प्रतियोगिता और बाजार का विकास करता है। इसी प्रकार प्रौद्योगिकी विकल्प भी उपस्थित कराता है। लेकिन क्या यह पर्यावरण के अवनयन की समस्याओं का कारण नहीं है। प्रौद्योगिकी के विकास में स्थान भेद न दिखाकर काल का अंतर दिखाया गया है। यह दर्शाया गया है कि समय के साथ प्रौद्योगिकी का विकास हुआ। इसी प्रकार यह भी दर्शाया गया है कि जहाँ प्रौद्योगिकी का विकास नहीं हो पाया वह क्षेत्र विकास में पिछड़ गया है।

'परम्परागत सूती वस्त्र उद्योग पश्चिम के नये वस्त्र मिलों से प्रतिस्पर्धा नहीं कर सका जो सस्ते अच्छी गुणवत्ता वाले वस्त्रों का निर्माण यंत्रीकृत औद्योगिक यूनिट में करते थे।' (पृष्ठ– 59)

'अहमदाबाद की मिलों में मशीन प्रौद्योगिकी का नवीकरण न होना इसका प्रमुख कारण है।' (पृष्ठ– 60)

'भौगोलिक दशाओं, उत्पाद की माँग श्रम और प्रौद्योगिकी के स्तर के आधार पर कृषि दो मुख्य प्रकारों में वर्गीकृत की जाती है।' (पृष्ठ– 42)

'पारम्परिक रूप से कम उपज प्राप्त करने के लिये निम्न स्तरीय प्रौद्योगिकी और पारिवारिक श्रम का उपयोग किया जाता है।' (पृष्ठ– 42)

उपर्युक्त उदाहरणों में ऐसा दर्शाया गया है जैसे कृषक स्वयं निम्न स्तर की प्रौद्योगिकी का उपयोग करना चाहते हैं। उन कारणों का न तो उल्लेख है और न ही संकेत जो

निम्न प्रौद्योगिकी के लिए उत्तरदायी हैं। मानव को सर्वश्रेष्ठ संसाधन घोषित करने के बाद प्रौद्योगिकी से युक्त मानव को पयार्वरण से अन्त:क्रिया करते हुए दिखाया गया था। इस अन्त:करण का प्रतिफल विकास है। विकास को तीन रूपों में प्रस्तुत किया गया है:

तालिका 2 : पाठ्यपुस्तक में 'विकास' की संकल्पना की प्रस्तुति

विकास होने के संकेतक :
कृषि का मशीनीकरण भी कृषि के विकास का एक अन्य पहलू है। (पृष्ठ–42)

विकास में असमानता :
कृषि का विकास विभिन्न भागों में विभिन्न गतियों से हुआ है। अधिक जनसंख्या वाले विकासशील देश अधिकता गहन कृषि करते हैं। जहां छोटी जोतों पर सामान्यत: जीविकोपार्जन के लिये फसलें उगायी जाती हैं। बड़ी जोतें वाणिज्यिक कृषि के लिये अधिक उपयुक्त होती हैं। (पृष्ठ–46)

विकास का माध्यम :
औद्योगीकरण से प्राय: नगरों और शहरों का विकास एवं वृद्धि होती है। (पृष्ठ–52)

विकास की इस प्रक्रिया में सरकार को ऐसे अभिकर्त्ता के रूप में प्रस्तुत किया गया है जो कल्याणकारी उद्देश्यों से अभिप्रेरित है। पूरी पुस्तक में सरकार की छवि को सुविधाओं के प्रदाता और विकास के प्रेरक में रूप में प्रस्तुत किया गया हैं:

''सरकारी प्रोत्साहनों से इसे पर्याप्त पूंजी उपलब्ध हुई।''

''हाल के वर्षों में सरकार ने भण्डारण की सुविधा के विकास के लिए खुद कदम उठाए हैं।''

इन उदाहरणों में देखा जा सकता है कि किस प्रकार से सरकार के 'खुद कदम' उठाने का उल्लेख कर राज्य की सत्ता को समर्थन दिया गया है। इसके अतिरिक्त पाठ्यपुस्तक के प्रत्येक अध्याय को सुझाव के साथ समाप्त किया गया है :

''अब यह सुनिश्चित करना हमारा कर्त्तव्य हो जाता है कि– सभी नवीकरणीय संसाधनों के उपयोग सतत्पोषणीय हैं... प्राकृतिक पर्यावरण तंत्र की हानि को कम से कम किया जाए।'' (पृष्ठ–6)

''हम भारतवासी भाग्यशाली हैं कि हमारे पास ऐसा संसाधन है। उन्हें योग्य एवं उत्पादक बनाने के लिए कुशल बनाने और अवसर प्रदान करने के लिए अवश्य ही शिक्षित किया जाना चाहिए।'' (पृष्ठ-73)

उपर्युक्त उदाहरण इस बात का प्रमाण है कि किस प्रकार से 'अवश्य' जैसे निश्चयसूचक शब्दों के साथ नियामक विमर्श (Regulatory Discourse) को तरजीह दी गयी है। उल्लेखनीय है कि इस प्रकार की प्रस्तुति की संख्या बहुत कम है।

मानव-पर्यावरण के संबंध के संदर्भ में पुस्तक में ऐसी विश्वदृष्टि को विकसित किया गया है जहाँ प्रकृति संसाधनों का स्रोत है और मानव इसका उपभोगकर्ता। प्रौद्योगिकी वह माध्यम है जिसके माध्यम से मनुष्य संसाधनों का उपभोग कर रहा है। इस उपभोग का प्रतिफल विकास है। इसका दुष्परिणाम पर्यावरण अवनयन है। प्रकृति मानव के क्रियाओं को नियंत्रित करती है। मानव भी प्रकृति पर नियंत्रण करता है। नियंत्रण की प्रक्रिया को सहजीविता के बदले प्रतियोगिता के रूप में प्रस्तुत किया गया है। प्रकृति के दोहन के दुष्परिणामों का वृहद्स्तरीय चित्र प्रस्तुत है। इनसे बचाव के सूक्ष्मस्तरीय प्रयासों का उल्लेख है। प्रकृति और मानव को अलग निकायों के रूप में प्रस्तुत किया गया है जिनके संबंध का आधार 'मानव के जीने की आवश्कताएं' हैं। प्रौद्योगिकी एक ऐसा विकल्प है जो प्रकृति के साथ समायोजन में मदद कर रहा है। अत: पाठ्यपुस्तक लोगों के जीवन को विविधता, जटिलता और चुनौतियों से युक्त होने के बजाय जीवन को सरल रूप में प्रस्तुत करती है। इसमें मानव पर्यावरण के संबंधों की जटिलता के उद्घाटन के बदले तकनीकी और वैज्ञानिक शब्दावली, उपयोगिता और वितरण के रूपों में तथ्यों को प्रस्तुत करने पर जोर है।

निष्कर्ष

विषय ज्ञान की दृष्टि से पुस्तक में 'आधुनिकता' के प्रारूप में स्थापित है जो नियमितता, सामान्यीकरण और भविष्य कथन की प्रवृत्तियों को दर्शाता है। यह सामाजिक यथार्थ को कार्य-कारण प्रभाव के रूप में प्रस्तुत करता है। इस प्रकार से प्रस्तुत पुस्तक में सामाजिक विज्ञान (विशेष रूप से भूगोल) को ऐसे सामाजिक विज्ञान के रूप में प्रस्तुत किया गया है जो वितरण का विज्ञान है न कि सामाजिक यथार्थ को समझने की आलोचनात्मक दृष्टि से युक्त विज्ञान। पुस्तक के अनुसार भौगोलिक दशाएँ जैसे-फसलों के उगने की प्राकृतिक दशाएँ, खनिज और शक्ति संसाधनों की प्राप्ति और वितरण की दशाएँ,

जनसंख्या के वितरण आदि को प्रभावित करने वाले कारक आदि भौगोलिक ज्ञान के अन्तर्गत हैं। सामाजिक-सांस्कृतिक पक्षों को भौगोलिक वितरण को प्रभावित करने वाला कारक मात्र माना गया है। मानवीय कियाओं और प्राकृतिक दशाओं के पारस्परिक संबंध में प्रकृति को नियंत्रक के रूप में प्रस्तुत किया गया है। यह भी उल्लेखनीय है कि सामाजिक प्राणी के रूप में मानव को सम समूह (होमोजेनयस ग्रूप) के रूप में दिखाया गया है। इसका प्रमाण उन कथनों में देख सकते हैं जहाँ कर्ता या अन्य किसी रूप में 'लोग' का प्रयोग किया गया है। यहाँ तक की जहां पर पर्यावरण अवनयन से संबंधित विवरण है वहाँ अन्य किसी भी पक्ष के बदले 'लोग' ही उत्तरदायी हैं। 'लोगों' द्वारा संसाधनों का दोहन करना या जनसंख्या की अधिक वृद्धि होने के कारण इस समस्या का पैदा होना अति सामान्यीकृत तथ्य है। पर्यावरण अवनयन के दुष्प्रभावों की चर्चा प्रकृति पर पड़ने वाले प्रभावों के संदर्भ में है। इन परिवर्तनों का मानव समाज के स्थानीय स्तर पर किसी भी प्रभाव की चर्चा नहीं की गई है। मानव और पर्यावरण के संबंध में जहाँ भी मानव पर दुष्प्रभाव पड़ रहा है वह उसके स्वास्थ्य, व्यवसाय एवं रहन-सहन से प्रत्यक्ष रूप से प्रभावित कर रहा है। इस प्रकार की दृष्टि का निहितार्थ है कि कोई भी प्राकृतिक समस्या स्वाभाविक रूप से प्रकट होती है। इसमें किसी प्रकार के मानवीय हस्तक्षेप की भूमिका नहीं होती है। पुस्तक में कृषि, उद्योग, खनन, जनसंख्या आदि से संबंधित समस्याओं की चर्चा की गई है। वैश्विक प्रभावों का भी उल्लेख किया गया है। उनसे बचाने के लिए जिस प्रकार के सुझाव दिये गए हैं वे केवल व्यक्तिगत स्तर के हैं। पाठ्यपुस्तक में शिक्षार्थी के परिवेश को पाठ्यसामग्री के रूप में शामिल करने का प्रयास किया गया है। उसे सीखने का सचेत और सक्रिय अभिकर्ता भी माना गया है। सीखने की प्रक्रिया में उसे एजेंसी प्रदान करने का प्रयास किया गया है। पाठ्यपुस्तक में विद्यार्थी की छवि एक ज्ञान निर्माता और कर्ता की है। विद्यार्थी की पहचान को समावेशी और विविधतायुक्त रखा गया है। विद्यार्थियों की पहचान के आयाम की दृष्टि से धर्म, जेण्डर और क्षेत्र की विविधता को शामिल किया गया है। सीखने के दायरे में विद्यालय के अतिरिक्त घर, बाजार, खेल के मैदान, अभिभावकों और समुदाय से बातचीत को प्रमुखता से स्थान दिया गया है। विद्यार्थियों की सतत संलग्नता को सुनिश्चित किया जाना ऐसा पक्ष है जिस पर ध्यान दिए जाने की आवश्यकता है।

संदर्भ

एप्पल, एम.डब्ल्यू. (1993), *ऑफिसियल नॉलेज,* न्यूयार्कः रूटलेज।

भोग, डी., मूलिक, डी., भरद्वाज, पी. एंड शर्मा, जे., (2012). *टैक्स्टबुक रेजिम्सः ए फेमिनिस्ट क्रिटिक ऑफ नेशन एंड आइडैंटिटी,* नई दिल्लीः निरन्तर।

हेडॉक, के. (2015), स्टेटेड एंड अनस्टेटेड एम्स आफ एनसीईआरटी सोशल साइंस टैक्स्टबुक्स, *इकोनोमिक एंड पॉलिटिकल वीकली,* 50(17), 109–119

इशित, जे. (2004), रिफ्लेक्शंस ऑन द स्टडी ऑफ टैक्स्टबुक्स, *हिस्ट्री ऑफ एजुकेशन,* 33(6), 683–696

एनसीईआरटी, (2006), *रिसोर्स एंड डवलपमेंट,* नई दिल्ली, एनसीईआरटी

एनसीईआरटी, (2005), *नेशनल करीकुलम फ्रेमवर्क,* नई दिल्ली, एनसीईआरटी

रामपाल, ए. एंड मंदेर, एच. (2013), लेशन ऑन फूड एंड हंगरः पेडागॉजी ऑफ इम्पैथी फॉर डेमोक्रेसी, इकोनोमिक एंड पालिटिकल वीकली, 48(28), 50–58।

विगनेल, पी. मार्टिन जे.आर. एंड एगिन्स, एस. (1993), द डिस्कोर्स ऑफ ज्योग्राफीः ऑर्डरिंग एंड एक्सप्लेनिंग द एक्सपेरिसल वर्ल्ड, इन एम.ए.के. हालीडे एंड जे.आर. मार्टिन (एडीटर) *राइटिंग साइंसः लिट्रेसी एंड डिस्कर्सिव पावर* (पीपी 136–165) लन्दनः द पाल्मर प्रैस

यंग, एम. (2008), *ब्रिंगिंग नॉलेज बैकः फ्रॉम सोशल कन्स्ट्रक्टिविज्म टू सोशल रिलिज्म इन द सोशियोलॉजी ऑफ एजुकेशन,* लन्दनः रूटलेज

परिप्रेक्ष्य
वर्ष 23, अंक 3, दिसंबर 2016

रवीन्द्रनाथ टैगोर के चिंतन में मातृभाषा और समग्र विकास एवं सृजन के अंत:संबंधों की खोज

प्रभात कुमार*

सारांश

बोलपुर जैसे छोटी जगह की निपट स्थानीयता से निकल कर विश्व पटल पर अपनी सार्वभौम उपस्थिति को दर्ज कराने वाले टैगोर के चिंतन में मातृभाषा और उसके विभिन्न आयाम से संबंधित विचारों की सशक्त उपस्थिति हमें अपनी भाषा से संबंधित नीतियों पर पुनर्विचार के लिए प्रेरित करती हैं। मेरा यह आलेख जहां एक ओर टैगोर की भाषा संबंधित विचारों की खोज-बीन करता है वहीं 'भारत-विचार' को विश्व परिदृश्य पर अक्षुण्ण बनाये रखने में उन विचारों की महत्ता को भी रेखांकित करने का प्रयास करता है। आज के वर्तमान परिप्रेक्ष्य में जब हम भारतीयों द्वारा ज्ञान के सृजन में की जाने वाली भागीदारी का मूल्यांकन सम्पूर्ण विश्व के संदर्भ में करते हैं तो उपलब्ध आंकड़े हमें निराश करते हैं। विश्व परिदृश्य से 'भारत-विचार' गायब है। इस 'भारत-विचार' के गायब हो जाने के पीछे का विज्ञान हमारी वैचारकी में गहरे पैवस्त भाषाई मतभेदों का विरूपित उन्मेष है। यह जानते हुए भी कि ज्ञानोत्पादन की पहली और सबसे महत्वपूर्ण शर्त शिक्षा तथा शिक्षण जगत में मातृभाषा की उपस्थिति है, हमारे नीति निर्धारकों ने सबसे पहले उसी मातृभाषा को अपने सोच के दायरे से बाहर कर दिया। हमारी शिक्षा व्यवस्था ने अंग्रेजी के वर्चस्व को इतनी श्रद्धा और अंधभक्ति से स्वीकार किया है कि हमारी मातृभाषायें संकट में हैं; हमारी सृजन क्षमता संकट में है। हम अपनी भारतीय भाषाओं में विचार-विनिमय करने को हीनता मानते हुए एक ऐसी स्थिति में जा पहुंचे हैं जहाँ अपने मूल से ही पूर्णत: अनभिज्ञ हो जाने का अंदेशा जारी होने लगा है। मेरा यह आलेख उन

*शोध छात्र, शिक्षा विभाग, विश्व-भारती, शान्ति निकेतन, बोलपुर, पश्चिम बंगाल
ईमेल-prabhat1381@gmail-com

सभी कारकों की भी गहरी जाँच-पड़ताल करता है जिसने भारतीय भाषाओं को हाशिये पर पहुंचा देने में अपनी महत्वपूर्ण भूमिका निभाई है। इससे बड़ी विडंबना क्या होगी कि रवींन्द्रनाथ टैगोर जैसे महान शिक्षाविद की मातृभाषा के संबंध में की गयी टिप्पणी तथा पिछले सत्तर सालों में विभिन्न शिक्षा आयोगों द्वारा आनंद की पाठशाला के निर्माण में मातृभाषा की महत्वपूर्ण भूमिका को रेखांकित करने के बावजूद मातृभाषा में पठन-पाठन बंद होने की कगार पर जा पहुँचा है। हमारी शिक्षा व्यवस्था हमारे चारों तरफ कुछ इस तरह के वातावरण के निर्माण में संलग्न है जिसमें हम सभी अपनी ही मातृभाषा की अवहेलना बिना यह जाने ही करने लगे हैं कि यह अवहेलना हमें विचार शून्य बना रही है। उस सघन चिंतन की प्रक्रिया से हमें दूर कर दे रही है जो नवाचार की पहली और परम महत्वपूर्ण शर्त है। विभिन्न आयोगों तथा समितियों के भाषा संबंधित सुझावों का संक्षिप्त विवरण भी यह आलेख प्रस्तुत करने का प्रयास करता है। समझ, सृजन और स्थानीय भाषा के बीच के अंतरसंबंधों की खोज करते हुए यह आलेख भूमंडलीकरण के उपरांत उपजी सांस्कृतिक साझेपन की स्थिति तथा बाजार के बढ़ते वर्चस्व के संदर्भ में उन देशी मूल आधारों, जिसमें मातृभाषा भी है, पर पड़ने वाले प्रभाव को उन तमाम संवेदनशील लोगों के बीच रखने का प्रयास भी करता है जो इस अखिल विश्व के निर्माण में भारतीयता की झलक चाहते हैं।

प्रस्तावना

निज भाषा उन्नति अहै, सब उन्नति को मूल
बिन निज भाषा-ज्ञान के, मिटत न हिय को सूल
अंग्रेजी पढ़ के जदपि, सब गुण होत प्रवीन
पै निज भाषा ज्ञान के, रहत हीन के हीन

-भारतेन्दु हरीश्चन्द्र

ब्रितानी हुकूमत के दो सौ सालों से अधिक समय के शासन काल में उन्नीसवीं शताब्दी का उत्तरार्ध एक ऐसे वक्त को इंगित करता है जिसमें न सिर्फ 1857 का गदर शामिल है बल्कि उन अनगिनत चैतन्य इतिहास पुरुषों के अवतरण का भी साक्षी रहा है जिन्होंने उस सामाजिक परिवर्तन का नेतृत्व किया और समाज को अपने मूल की ओर लौटने को उधृत किया। भारतीय समाज सेवकों, साहित्यकारों और चिंतकों को यह बात बड़ी जल्द समझ

में आ गयी थी कि अंग्रेजी हुकूमत के रहते भारतीय कभी भी अपनी भारतीयता को हासिल नहीं कर पायेंगे। यही वह सोच थी जिसने भारतीय समाज को अपने देशज तत्वों के खोज की ओर अग्रसर किया। उन्हीं देशज तत्वों में अपनी भाषा–वाणी की खोज भी शामिल थी। अपनी भाषा की खोज को भारतेन्दु हरीश्चन्द्र ने किस कदर महत्वपूर्ण माना था, यह ऊपर उधृत पंक्तिओं से स्वंय परिलक्षित होता है। आज के वर्तमान परिप्रेक्ष्य में जब हम भारतीयों द्वारा ज्ञान के सृजन में की जाने वाली भागीदारी का मूल्यांकन सम्पूर्ण विश्व के संदर्भ में करते हैं तो उपलब्ध आंकड़े हमें निराश करते हैं। विश्व परिदृश्य से 'भारत–विचार' गायब है। इस 'भारत–विचार' के गायब हो जाने के पीछे का विज्ञान हमारी वैचारकी में गहरे पैवस्त भाषाई मतभेदों का विरूपित उन्मेष है। यह जानते हुए भी की ज्ञानोत्पादन की पहली और सबसे महत्वपूर्ण शर्त शिक्षा तथा शिक्षण जगत में मातृभाषा की उपस्थिति है, हमारे नीति निर्धारकों ने सबसे पहले उसी मातृभाषा को अपनी सोच के दायरे से बाहर कर दिया। हमारी शिक्षा व्यवस्था ने अंग्रेजी के वर्चस्व को इतनी श्रद्धा और अंधभक्ति से स्वीकार किया है कि हमारी मातृभाषाऐं संकट में हैं, हमारी सृजन क्षमता संकट में है। हम अपनी भारतीय भाषाओं में विचार–विनिमय करने को हीनता मानते हुए एक ऐसी स्थिति में जा पहुंचे हैं जहाँ अपने मूल से ही पूर्णत: अनभिज्ञ हो जाने का अंदेशा जारी होने लगा है। इससे बड़ी विडंवना क्या होगी कि रवींन्द्रनाथ टैगोर जैसे महान शिक्षाविद् की मातृभाषा के संबंध में की गयी टिप्पणी तथा पिछले सत्तर सालों में विभिन्न शिक्षा आयोगों द्वारा आनंद की पाठशाला के निर्माण में मातृभाषा की महत्वपूर्ण भूमिका को रेखांकित करने के बावजूद मातृभाषा में पठन–पाठन बंद होने की कगार पर जा पहुँचा है। हमारी शिक्षा व्यवस्था हमारे चारों तरफ कुछ इस तरह के वातावरण के निर्माण में संलग्न है जिसमें हम सभी अपनी ही मातृभाषा की अवहेलना बिना यह जाने ही करने लगे हैं कि यह अवहेलना हमें विचारशून्य बना रही है; उस सघन चिंतन की प्रक्रिया से हमें दूर कर दे रही है जो नवाचार की पहली और परम महत्वपूर्ण शर्त है।

प्रासंगिकता

उन्नीसवीं शताब्दी के उत्तरार्ध से लेकर बींसवीं शताब्दी के शुरुआती चार दशक तक हमारे शिक्षाविदों तथा दार्शनिकों ने उन देशी तत्वों को खोजने में अपना महत्वपूर्ण योगदान दिया जिनकी उपस्थिति ने ही सदियों पहले भारत को विश्व–गुरु का दर्जा पाने में सहायता की थी। ईश्वरचंद्र विद्यासागर, रवींद्रनाथ टैगोर, बंकिमचन्द्र, महात्मा गाँधी जैसे चिंतकों ने बहुत जल्दी यह समझ लिया था कि भारतीयता और 'भारत–विचार' की पुर्नप्रतिष्ठा तो उन देशज तत्वों द्वारा ही संभव है जिसे अंग्रेजी शासन तंत्र ने पिछड़ेपन का कारण माना।

यह टैगोर की अंतर्दृष्टि ही थी जिसने शिक्षा–व्यवस्था में मातृभाषा के उपयोग द्वारा ज्ञान की औपनिवेशिक अवधारणाओं को मिटाने की कोशिश की थी। परन्तु आज तेजी से बदल रही परिस्थिति में जबकि नीति निर्धारकों की दृष्टि में शिक्षा का केवल आर्थिक पक्ष रह गया हो, बाजार के संदर्भ में ही सिर्फ किसी विचार या नीति का मूल्यांकन किया जा रहा हो तो फिर भारतीयता के अस्तित्व पर प्रश्न चिन्ह लगना लाजमी हो जाता है। इस निरंकुश बाजार ने आज फिर से उन मूलभूत देशी तत्वों को, जिनमें हमारी भारतीय भाषाएँ भी हैं, ही समाप्त करने पर तुली हुई हैं जो भारतीयता की पहचान को अक्षुण्ण रखने के लिए परम–आवश्यक है। अत: प्रस्तुत विषय का अध्ययन न केवल प्रासंगिक है अपितु अनिवार्य भी। शायद तभी हम सभी अपने अस्तित्व को थोड़ा बहुत बचा पायें, अपनी विवेक शक्ति द्वारा अच्छे–बुरे का अंतर समझ पायें।

उद्देश्य

(1) रवींद्रनाथ के भाषा से संबंधित विचारों का वर्तमान परिपेक्ष्य में अध्ययन।

(2) भाषा, समग्र विकास एवं सृजन के अंतरसंबंधों की खोज।

विश्लेषण

राष्ट्रीय पाठ्यचर्या–2005 उन्हीं बातों को हमारी शिक्षा व्यवस्था में समायोजित करने की बात करती है जिन बातों को टैगोर आज से सौ साल पहले ही कह चुके हैं। मातृभाषा एक महत्वपूर्ण माध्यम है... बच्चों को उनके अपने ज्ञान सृजन में सक्षम बनाने में इसकी बड़ी महत्वपूर्ण भूमिका होती है। यह एक सर्वविदित तथ्य है कि सम्पूर्ण ज्ञान को रचने तथा किसी पहलू को समझने की खुशी का सीधा–सीधा संबंध मातृभाषा से है। रवींद्रनाथ टैगोर, पाउलो फ्रेरे, नोम चोमस्की जैसे शिक्षकों और विचारकों ने भाषा को नवीन सोच के प्रकटीकरण तथा ज्ञान के संप्रेषण हेतु सबसे महत्वपूर्ण माध्यम माना।

भाषा न सिर्फ हमें अस्तित्व प्रदान करती है बल्कि हमारे शिष्ट व्यवहारों के लिए भी उत्तरदायी होती है। टैगोर ने मातृभाषा को संप्रेषण हेतु सबसे अधिक सशक्त और प्रभावशाली माध्यम माना। टैगोर खुद भी अपने महान और सुन्दर विचारों को अपनी मातृभाषा में ही अभिव्यक्त कर पाये थे। टैगोर अंग्रेजी को शिक्षा का माध्यम बनाने के पक्षधर नहीं थे। हाँ, उन्होंने अंग्रेजी को एक विषय के तौर पर पढ़ने–पढ़ाने को आवश्यक बताया। Tagore always said that mother tongue should be the medium of education. He believed that harmonization of child's education, its life and creative self-expression is possible only through ones mother tongue. This is

because, language and thought could only be brought together through the medium of one's cultural language, and this alone could assure the integration of education with the whole of life. टैगोर हमेशा कहा करते थे कि मातृभाषा शिक्षा का माध्यम होनी चाहिए। उनका मानना था कि बच्चे की शिक्षा, उसके जीवन और रचनात्मक आत्म अभिव्यक्ति के बीच संयोजन केवल मातृभाषा के माध्यम से ही संभव है। इसका कारण यह है कि, भाषा और विचार में तादात्म केवल अपनी सांस्कृतिक भाषा के माध्यम से ही हो सकता है, और यह अकेले ही पूरे जीवन के साथ शिक्षा का एकीकरण सुनिश्चित कर सकता है।

यह जानते हुए भी की भाषा ही वह धुरी है जो हमारे संज्ञानात्मक तथा सम्प्रेषणात्मक विकास को दिशा देती है, हमारी शिक्षा–व्यवस्था इस आधारभूत सिद्धांत को नेपथ्य में भेज चुकी है। स्वतंत्रता प्राप्ति के सात दशक बाद भी हम भाषा से संबंधित नीतियों पर एक राय कायम करने में असफल रहे हैं। अंग्रेजी भाषा के बढ़ते आधिपत्य ने दूसरी सभी स्थानीय भाषाओं के सामने अस्तित्त्व का संकट खड़ा कर दिया है। आज अगर हम अपनी सृजनात्मकता से दूर हो रहे हैं या फिर उस ज्ञान–समाज के निर्माण में असफल हो रहे हैं जो विश्व के नक्शे पर भारतीयता की पुर्नस्थापना के लिए महत्वपूर्ण शर्त है, तो इसके पीछे उस अंग्रेजी भाषा, जो बाजार की भी भाषा बन चुकी है, के बढ़ते प्रभाव का ही हाथ है जिसने भारतीय मानस में अपनी ही भाषा के प्रति विरक्ति पैदा करने में अभूतपूर्व सफलता प्राप्त कर ली है। अंग्रेजी भाषा के बढ़ते प्रभाव ने अन्य भाषाओं को किस कदर आक्रांत कर रखा है, उसकी एक झलक हम उपरोक्त कथन तथा आँकड़ों में पा सकते हैं।

तालिका–1
विज्ञान पत्रिकाओं में प्रकाशित शोधपत्र

देश/वर्ष	1996–1999	2000–2003	2004–2007	2008–2011
	EL-LL	**EL-LL**	**EL-LL**	**EL-LL**
नीदरलैंड	25–1	22–1	28–1	43–1
इटली	11–1	19–1	25–1	30–1
रूस	6–1	5–1	8–1	27–1
जर्मनी	7–1	6–1	8–1	9–1
चीन	2–1	2–1	1–1	2–1

*EL-LL i.e. English Language – Local Language

कुछ अपवादों को छोड़कर यह आम प्रवृति देखी जा रही है कि शोध-पत्रिकाओं में अंग्रेजी भाषा में छपने वाले शोध-पत्रों की संख्या स्थानीय भाषा में छपने वाले शोध-पत्रों की संख्या से कहीं अधिक है और लगातार बढती जा रही है। अंग्रेजी भाषा की सशक्त उपस्थिति का आभास इस बात से पता चलता है कि जिन यूरोपीय देशों में अंग्रेजी को दूसरी भाषा के रूप में मान्यता थी वही अंग्रेजी उन देशों की अपनी भाषा को प्रथम पायदान से हटाते हुए खुद को प्रतिस्थापित कर चुकी है।

बच्चों का बचपन ही वह समय होता है जब वह सहज रूप से कई भाषाओं को आत्मसात कर सकता है। यही वह अवधि होती है जब उनकी असीम मानसिक क्षमताओं का विकास उन्हें आने वाले जीवन के लिए तैयार कर रहा होता है। इन्हीं बातों को टैगोर दशकों पहले निम्नांकित पंक्तियों द्वारा व्यक्त कर चुके हैं: …Children's minds are sensitive to the influences of the world…This sensitive receptivity allows them, without any strain, to master language, which is the most complex and difficult instrument of expression, full of indefinable ideas and abstract symbols... In childhood we learn our lessons with the aid of both body and mind, with all the senses active and eager. बच्चों का दिमाग दुनिया के प्रभावों के प्रति संवेदनशील होता है... यह संवेदनशील-ग्रहणशीलता उन्हें किसी भी तनाव के बिना, भाषा को आत्मसात कर लेने की क्षमता देती है, जो अभिव्यक्ति का सबसे जटिल और कठिन साधन है, अनिश्चित विचारों और अमूर्त प्रतीकों से भरा... बचपन में हम सभी इंद्रियों की सक्रिय उपस्थिति में शरीर और मन की सहायता से सीखते हैं।

भाषा के बिना हम जीवन की कल्पना नहीं कर सकते क्योंकि यही भाषा हमारे बीच संवाद का जरिया बनती है, क्योंकि यही भाषा हमारे समाज, संस्कृति, ज्ञान की प्रणाली, हमारे अतीत और वर्तमान तथा जटिल भविष्य से संबंधित उलझनों पर सवाल खड़ा करने की शक्ति देती है। टैगोर कहते हैं कि मनुष्य को प्रकृति की सबसे बड़ी देन भाषा ही है जिसके सहारे वह इस विराट जगत को प्रतीकात्मक रूप में अभिव्यक्त कर पाता है। यह सही है की जब हम चेतना के सर्वोच्च स्तर पर पहुँच जाते हैं तो फिर भाषा के बिना भी भाव की अभिव्यक्ति हो जाती है परन्तु एक आम व्यक्ति के लिए अपनी अनुभूतियों को व्यक्त करने का साधन सिर्फ भाषा ही रह जाती है। प्रारंभिक अवस्था में बच्चे को दिये जाने वाले ज्ञान की भाषा, चाहे वह शिक्षक द्वारा अभिव्यक्त की जा रही हो या फिर किताबों में लिखी हो, स्पष्ट होनी चाहिए। ठीक बात का ठीक मतलब बच्चों की सही समझ हेतु आवश्यक है। भाव आधारित भाषा तथा रूप-अलंकार के अत्यधिक उपयोग से बचना बच्चों में विषयवस्तु की ग्रहणशीलता को बढ़ाता है।

सैद्धान्तिक नीतियां तथा प्रायोगिक कार्यान्वयन के बीच विरोधाभास

1919 में कलकत्ता विश्वविद्यालय आयोग ने कहा था कि उच्च विद्यालयों तक की शिक्षा में निर्देशन तथा शिक्षण का माध्यम निश्चित रूप से स्थानीय भाषा में ही होना चाहिए। वर्धा शिक्षा योजना में इस बात का बड़ी शिद्दत से जिक्र किया गया था कि... education must be imparted through the mother tongue… the proper teaching of the mother tongue is the foundation of all education. Without the capacity to speak effectively and to read and to write correctly and lucidly, no one can develop precision of thought or clarity of ideas. मातृभाषा के माध्यम से शिक्षा प्रदान की जानी चाहिए ... मातृभाषा का उचित शिक्षण सभी प्रकार की शिक्षा का आधार है। सही ढंग से और स्पष्ट रूप से बोलने, पढ़ने और लिखने की क्षमता के बिना, कोई भी अपने विचारों को स्पष्टता के साथ विकसित तथा व्यक्त नहीं कर सकता है।, भारतीय संविधान की आठवीं अनुसूची विशेष रूप से भाषाओं और लिपियों को ही समर्पित है। यह अनुसूची 22 भारतीय भाषाओं, जिसमें 14 भाषाएँ तो संविधान निर्माण के समय ही शामिल कर ली गयी थीं, को संरक्षित एवं संपोषित करने की बात करता है। अनुच्छेद 351 कहता है कि: it shall be the duty of the Union to promote the spread of the Hindi language to develop it so that it may serve as a medium of expression for all the elements of the composite culture of India and to secure its enrichment… यह संघ का कर्तव्य होगा कि वह हिंदी को विकसित करने के लिए हिंदी भाषा के प्रसार को बढ़ावा दे जिससे यह भारत की समग्र संस्कृति के सभी तत्वों की अभिव्यक्ति हेतु माध्यम स्वरूप योगदान कर सके और इसके संवर्धन को सुरक्षित कर सके।, राष्ट्रीय शिक्षा नीति 1986 कहती है: Articles 29 and 30 guarantee the right of minorities to conserve the language…No citizen shall be denied admission into any educational institution on grounds of language…adequate facilities for instruction in the mother tongue at the primary stage of education to children belonging to linguistic minority groups. अनुछेद 29 और 30 भाषा को संरक्षित करने हेतु अल्पसंख्यकों को अधिकार की गारंटी देता है... कोई नागरिक भाषा के आधार पर किसी भी शैक्षणिक संस्थान में प्रवेश से वंचित नहीं होगा...। अल्पसंख्यक समूह के बच्चों के लिए शिक्षा के प्राथमिक स्तर पर मातृभाषा में निर्देश के लिए पर्याप्त सुविधाएं उपलब्ध करानी होंगी।, Kothari commission report and The Central Advisory Board of Education in 1956 recommended three language formulas. Kothari commission says: Hindi is the official language of the Union and it is expected in due course of time to become the lingua franca of the country. Its ultimate importance in the language curriculum will be second only to that of the mother-

tongue… At the lower primary stage only on language should be studied compulsorily& the mother-tongue or the regional language. कोठारी आयोग की रिपोर्ट और केंद्रीय सलाहकार शिक्षा समिति ने 1964 तथा 1956 में तीन भाषा सूत्र की सिफारिश की थी। कोठारी आयोग का कहना है हिंदी संघ की अधिकारिक भाषा है और देश में इसके मुख्य भाषा के रूप में काम करने की उम्मीद है। केवल मातृभाषा के संदर्भ में ही हिंदी को दूसरे स्थान पर रखा जा सकता है... प्राथमिक स्तर पर केवल मातृभाषा या स्थानीय भाषा में ही पठन-पाठन किया जाना चाहिए।, इस तरह हम पाते हैं कि पिछले सौ सालों में भारतीय भाषाओं के विकास को तरजीह देने की बात हमारी वैचारिकी में शामिल रही है। राष्ट्रीय पाठ्यचर्या-2005 टैगोर के उद्धरण से प्रारंभ होती है। राष्ट्रीय ज्ञान आयोग का विवरण टैगोर की एक प्रसिद्ध कविता से शुरु होता है परन्तु महत्वपूर्ण सवाल यह है कि टैगोर के भाषा संबंधित विचारों को हमारे नीति निर्माताओं ने प्रायोगिक तौर पर कितना कार्यान्वित किया, हमने टैगोर के विचारों को किस हद तक अमली जामा पहनाने का प्रयास किया। अनुभव और आँकड़े बताते हैं कि हम अपने विचारों और कार्यों में गहरी विषमता के आदी रहे हैं। मातृभाषा या स्थानीय भाषा में शिक्षण-प्रशिक्षण या पठन-पाठन तथा मातृभाषा में गुणवत्ता पूर्ण पाठ्यपुस्तकों की लगातार कम हो रही उपलब्धता शिक्षा से जुड़े तमाम हितधारकों की निष्ठा पर प्रश्नचिन्ह खड़े कर रही है। राष्ट्रीय ज्ञान आयोग की रिपोर्ट बताती है कि बारह राज्यों तथा तीन केंद्र शासित प्रेदशों ने अंग्रेजी विषय की पढ़ाई को प्रथम वर्ग से अनिवार्य कर दिया है। आने वाले समय में अंग्रेजी विषय को पढ़ाने की अनिवार्यता से आगे बढ़ते हुए शिक्षा का माध्यम भी अंग्रेजी हो जाये तो अतिशयोक्ति न होगी।

टैगोर ने अपने आलेख 'शिक्षा में हेर-फेर' द्वारा आज से 123 साल पहले मातृभाषा से संबंधित उन बातों का जिक्र किया था जिन विषयों पर आज हम विचार कर रहे हैं। मातृभाषा तथा स्थानीय भाषा में अच्छी किताबों की अनुपलब्धता और उनके कारण बच्चों की समझ पर पड़ने वाले नकारात्मक प्रभाव का उल्लेख गुरुदेव अपने इस आलेख में करते हैं। वे बताते हैं कि बच्चों को बांग्ला भाषा इस तरह से नहीं सिखाई जाती कि वे घर बैठकर अपनी इच्छा से बांग्ला काव्य का वास्तविक स्वाद ग्रहण कर सकें और बेचारे बालक अंग्रेजी भी इतनी नहीं जानते कि उस भाषा की बालोचित पुस्तकें पढ़ सकें। शिशुओं के लिए लिखी अंग्रेजी पुस्तकों में अंग्रेजी संस्कृति का वातावरण होता है उसमें अंग्रेजी घर की बातें और कौटुम्बिक वार्तालाप होता है... विदेशी भाषाओं में अभिव्यक्ति

या लिखी गयी किताबों को टैगोर बच्चों के विकास में एक बड़ी बाधा के रूप में देखते हैं। विदेशी किताबों की विषयवस्तु विदेशों की भौगोलिक स्थिति तथा विदेशी वातावरण में रचे-पगे संदर्भों को व्यक्त करता है जो यहाँ के बच्चों के लिए पूरी तरह नया होता है। बच्चा किताबों की अपेक्षा अपने आस-पास के वातावरण से अधिक सीखता है परन्तु जब वह वर्ग में सीख रहे चीजों या किताब में उद्धृत बातों का कोई मेल अपने वातावरण की चीजों के साथ नहीं पाता है तो असमंजस में पड़ जाता है और यहीं से समस्या की शुरुआत होती है। वह चीजों को बिना समझे ही ग्रहण करने लगता है। फलतः सृजनात्मकता बच्चे से दूर होने लगती है। यही कारण था कि टैगोर ने बच्चों के लिए मातृभाषा को शिक्षा का माध्यम बनाने की वकालत की थी। टैगोर ने स्थानीय भाषा में गुणवत्ता के समावेश की भी बात की थी। उनके विचार में अनुदित किताबें स्थानीय भाषा में लिखी किताबों की जगह नहीं ले सकती हैं। उनकी बातों को हम निम्नांकित वाक्यों द्वारा आसानी से समझ सकते है: Firstly; English is very much a foreign language for us. It has no resemblance to our language in syntax and grammar. On top of it even the ideas and topics are alien. Hence everything from top to bottom has to be memorizing before any comprehension dawns. The result is akin to swallowing one's food without properly chewing. पहले तो, अंग्रेजी हमारे लिए एक विदेशी भाषा है। वाक्य रचना और व्याकरण की दृष्टि से अंग्रेजी का हमारी भाषा से कोई समानता नहीं है। इसके इतर विचार और विषय भी अनजाने होते हैं। इसलिए किसी चीज को समझने की जगह सीधे-सीधे सब कुछ याद कर लेने की कोशिश होती है। यह ठीक चबाए बिना अपने भोजन को निगलने जैसा ही है।

पहले हम समाज में रहते थे और स्थानीय भाषा बोलते थे। फिर राष्ट्र में रहने लगे और राष्ट्रीय भाषा बोलने लगे। 1947 से पहले देश गुलाम था,लोग आजाद थे; 1947 के बाद देश आजाद हो गया, हम गुलाम हो गये क्योंकि अब हम समाज या राष्ट्र में न रह कर बाजार में रहने लगे हैं और बाजार की भाषा सिर्फ इंग्लिश है। इस बाजार की भाषा ने हमें कुछ इस कदर आक्रांत कर रखा है कि दूसरे हमें हमारी पहचान बताते हैं।

निष्कर्ष

'भारत-विचार' की उपस्थिति को विश्व फलक पर दर्ज कराने हेतु यह जरूरी है कि विद्यालयों में शिक्षा तथा शिक्षण को मातृभाषा से जोड़ा जाय और साथ-ही-साथ हमारी शिक्षा नीतियां उन तत्वों को संरक्षित करें जो मातृभाषा के उन्मेष हेतु जरूरी हों। किसी पुरानी नीति की समीक्षा इस बात का संज्ञान लेते हुए कि जीवन का लक्ष्य क्या है, नयी

बदली हुई परिस्थिति में अवश्य की जानी चाहिये। आज के इस भूमंडलीकरण की दौड़ मे अगर हमने बाजार को विचार पर हावी होने का मौका दिया, जैसा कि हम दे भी रहे हैं, तो फिर हमें उस कठिन समय के लिये तैयार रहना चाहिये जब हम दूसरे का दिया खा रहे होगें, दूसरे के अनुसार ही सोच रहे होंग। आदमी के संस्कारों की संवाहक 'मातृभाषा' की उपयोगिता का मूल्यांकन हम नफे-नुकसान की तराजू द्वारा नहीं कर सकते हैं। प्रवाहधर्मी जीवन वाली भारतीयता को समझने की शक्ति तो सिर्फ अपनी भाषा में ही निहित होती है। सर्जनात्मकता के भूगोल के विविध और विस्तृत रूप को पाने हेतु टैगोर के भाषा संबंधी विचारों के परिप्रेक्ष्य में शिक्षा के हितधारकों को सोचना होगा, समय रहते चेतना होगा। मातृभाषा तथा भावुकता का गहरा संबंध होता है। मातृभाषा का प्रसार एवं प्रचलन हमारे आत्मविश्वास, स्वाभिमान, सांस्कृतिक गौरव को न केवल बचाए रखता है बल्कि आने वाले असंवेदनशील समय के कठोर सत्य से सहज साक्षात्कार के लिए तैयार भी करता है।

संदर्भ

राष्ट्रीय पाठ्यचर्या-2005, नई दिल्ली, एन.सी.ई.आर.टी., पृष्ठ-iii

इंदिरा गांधी मुक्त विश्वविद्यालय (2007), फिलॉसाफीकल एवं सोशियोलॉजीकल पर्सपेक्टिव ऑफ इंडिया (एमईएस 051), ब्लॉक 2-रिसर्च प्रॉब्लम, यूनिट-1, नई दिल्ली, इग्नू, पृष्ठ-57

https://www.researchtrends.com/issue-31-november-2012/the-language-of-future-scientificcommunication/

राधाकृष्णन कमीशन रिपोर्ट, पृष्ठ-22

http://www.kkhsou.in/main/education/wardha.html

https://www.google.co.in url?sa=t&rct=j&q=&esrc=s&source=web&cd=3&cad=rja&uact=8&ved=0ahUKEwjGpavn7_jRAhUBOZQKHaDTDgMQFggsMAI&url=http%3A%2F%2Fmhrd.gov.

Report of The Education Commission (1964-66)- Education And National Development, पृष्ठ-192, krishikosh.egranth.ac.in/bitstream/1/2041424/1/CCS270.pd

राष्ट्रीय ज्ञान आयोग रिपोर्ट, पृष्ठ-32

knowledgecommissionarchive.nic.in/reports/report07.asp

हितेन भाया, (2012), टैगोर ऑन एजुकेशन, कोलकाता, डे पब्लिशिंग, पृष्ठ-14-15

परिप्रेक्ष्य
वर्ष 23, अंक 3, दिसंबर 2016

भाषा शिक्षण में आलोचनात्मक परिप्रेक्ष्य की संभावना

बीरेन्द्र सिंह रावत* एवं **रजनी***

भूमिका

अलग-अलग संस्कृतियों में विश्वास करने वाले/वाली व्यक्ति शिक्षा से अलग-अलग किस्म की उम्मीद रखते/रखती हैं। शिक्षा के जरिए विद्यार्थियों को या तो ऐसा बनाने की कोशिश की जाती है या वैसा। कई बार शिक्षकों/शिक्षिकाओं को भी शिक्षा के द्वारा फैलाई या विकसित की जा रही संस्कृतियों के दूरगामी परिणामों को समझने में मुश्किल पेश आती है। कई शिक्षक/शिक्षिकाएँ मानते/मानती हैं कि शिक्षा के जरिए बच्चों को अच्छा बनाया जाता है। लेकिन वे इस सामाजिक तथ्य को समझने में असफल रहते/रहती हैं कि अच्छा बनाया जाना संस्कृति सापेक्ष पारिभाषिक पद है। इस पर्चे में शिक्षा के द्वारा अच्छा बनाये जाने की सापेक्षता को आलोचनात्मक परिप्रेक्ष्य के संदर्भ में समझने की कोशिश की गयी है।

आलोचनात्मक होने के मायने

पर्चे के इस भाग में आलोचनात्मक होने के अर्थ को दो उप-खण्डों की मदद से समझाया जा रहा है।

प्रत्यक्षवाद का प्रतिकार

आलोचनात्मकता की अवधारणा को समझने के लिए, प्रत्यक्षवाद की अवधारणा को समझना जरूरी है। क्योंकि प्रत्यक्षवाद की अवधारणा के विरोध में खड़े हुए फ्रैंकफ्रर्ट स्कूल के सिद्धांतकारों ने प्रत्यक्षवाद की गंभीर ख़ामियों को समझा था। इन सिद्धांतकारों का कहना है कि प्रत्यक्षवाद 'दिये' गये को ही आदर्श बनाकर उसी का पुनरुत्पादन

*केंद्रीय शिक्षा संस्थान, शिक्षा विभाग, दिल्ली विश्वविद्यालय, दिल्ली

करता है। उनके अनुसार प्रत्यक्षवाद 'दिये' गए के साथ चिपक ही नहीं जाता, बल्कि उसे सही भी मानता है। (बोटोमोर.2007-28)। फ्रैंकफ्रर्ट स्कूल ने प्रत्यक्षवाद की आलोचना तीन आधारों पर की है। पहला, प्रत्यक्षवाद एक अपर्याप्त तथा भ्रामक अप्रोच है, जिसके सहारे सामाजिक जीवन की सच्चाई को जाना ही नहीं जा सकता। दूसरा, जो 'है' उसी को अपनी मान्यता देकर यह किसी भी प्रकार के रेडिकल परिवर्तन को बाधित कर समाज को 'राजनैतिक ख़ामोशी' की तरफ ले जाता है। तीसरा, यह 'टेक्नोक्रेटिक डोमिनेशन' पर टिका होने के कारण प्रभुत्व के नये रूपों को पैदा करता है। (वही)।

फ्रैंकफ्रर्ट स्कूल से निकला आलोचनात्मक चिंतन अपने जन्म से ही 'दिये' गये पर सवाल उठाता आया है। ऐसे सवाल जो सामाजिक संरचनाओं में शक्ति-संबंधों से संबंधित हों। ऐसे सवाल जो सामाजिक शक्ति-संबंधों को यथावत बनाए रखने के विचार को चुनौती देते हों। आलोचनात्मक चिंतन के अनुसार 'चारों तरफ से हमें एक व्यवहारवादी विमर्श ने घेर रखा है, वास्तविकता को बदलना नहीं उसके अनुरूप ढलना ही जिसका मूल मंत्र है।' (फ्रेरे-2010-उम्मीदों का शिक्षाशास्त्र र:9)। स्वयं को 'दिये' गये ज्ञान के अनुरूप 'ढलने' से बचाने के लिए मनुष्य को ऐतिहासिक चेतना से लैस होना होता है। उसे यह समझना होता है कि वह जैसा है, वह किन ऐतिहासिक प्रक्रियाओं के परिणाम स्वरूप है। मनुष्य को ऐतिहासिक चेतना के साथ जीने में मदद करना, आलोचनात्मक चिंतन का एक उद्देश्य है। यह चिंतन किसी अलौकिक सत्ता की खोज के लिये परेशान नहीं रहता है। इस चिंतन धारा के अनुसार 'मानवीय स्थिति पर किया जाने वाला चिंतन अस्तित्व की बुनियादी शर्त ही पर किया जाने वाला चिंतन है। और यह बुनियादी शर्त है, आलोचनात्मक चिंतन जिसके जरिए मनुष्य एक दूसरे को एक स्थिति' में (खोज पाते हैं ज्यों-ज्यों यथार्थ का अनावरण होता जाता है, मनुष्य अपनी डूब में से उभरते जाते हैं और हस्तक्षेप करने की क्षमता अर्जित करते जाते हैं। यथार्थ में हस्तक्षेप स्वयं एक ऐतिहासिक बोध है इस प्रकार वह उभरने से एक कदम आगे बढ़ने की अवस्था है। यह स्थिति के विवेकीकरण का परिणाम है। विवेकीकरण बोधवृत्ति का गहन होना है, जो हर प्रकार के उभरने की विशेषता है। (फ्रेरे.1997. उत्पीड़ितों का शिक्षणशास्त्र: 67)।

आलोचनात्मक चिंतन के लिए मनुष्य और उनके समूहों में विवेकीकरण की प्रक्रिया को जगाना और तेज करना एक अनिवार्य शर्त है। 'विवेकीकरण' का अर्थ है सामाजिक, राजनीतिक तथा आर्थिक अंतर्विरोधों को समझना और यथार्थ के उत्पीड़क

तत्वों के विरुद्ध, कर्म करना।' (वही:6)। प्रत्यक्षवाद के द्वारा मनुष्य को 'कर्ताओं' में नहीं बल्कि 'भोक्ताओं' में रूपांतरित किया जाता है। विवेकीकरण की प्रक्रिया इस तरह के रूपांतरण को चुनौती देती है। विवेकीकरण 'भोक्ताओं' को पुन: 'कर्ताओं' में रूपांतरित करने की प्रक्रिया है। 'विवेकीकरण से तो यह संम्भव होता है कि ऐसे लोग ऐतिहासिक प्रक्रिया में जिम्मेदार कर्ताओं के रूप में प्रवेश करें। विवेकीकरण उन्हें अपनी अभिपुष्टि (सेल्फ अफर्मेशन) की खोज में लगाता है और इस प्रकार उन्हें मतान्ध से बचाता है। (वही:1-2)। प्रत्यक्षवाद 'तकनीक' को महत्त्वपूर्ण बना देता है। जिसमें 'दिये' के अनुसार व्यवहार करना ही नहीं, बल्कि 'दिये' गये के अनुसार और अच्छा व्यवहार करना ही ध्येय बना दिया जाता है। प्रत्यक्षवाद इस सवाल को पैदा होने से रोकता है कि जो 'है' वही क्यों है ? जो दिया गया है वही क्यों दिया गया है? इस तरह प्रत्यक्षवाद ज्ञानमीमांसा को हाशिये पर धकेल देता है। इसके असर से मनुष्य स्वयं को दूसरे की सापेक्षता में खोज पाने में असमर्थ हो जाने के कारण, शक्ति-संबंधों की पहचान कर पाने से वंचित रह जाता/जाती है। 'उत्पीड़ित लोग स्वयं पर भरोसा करना तभी शुरु करते हैं, जब वे उत्पीड़क को खोज लेते हैं और अपनी मुक्ति के लिए संगठित संघर्ष करने लगते हैं। यह खोज नितांत बौद्धिक खोज नहीं हो सकती। इसके लिए कर्म भी आवश्यक है। लकिन यह खोज निरे कर्मवाद तक भी सीमित नहीं होती। इसमें चिंतन भी अवश्य शामिल रहना चाहिए। तभी यह खोज 'आचरण' (प्रैक्सिस) कहलाएगी।' (वही:27)।

एडर्नो ने प्रत्यक्षवादी मॉडल के तहत उत्पादित की जाने वाली संस्कृति को 'संस्कृति उद्योग' के रूप में परिभाषित किया। 'संस्कृति उद्योग की सफलता इस बात पर निर्भर नहीं करती कि वह किसी विचारधारा का दिखावा करता है और किसी वस्तु की असली प्रकृति को छिपा लेता है। वह इस बात पर निर्भर करती है कि वह इस विचार को खत्म कर दे कि इस यथास्थिति का कोई विकल्प है।' (एडर्नो. 2006-16-17)। एडर्नो आगे कहते हैं कि 'संस्कृति उद्योग चिंतन की पराजय की सामाजिक अनुभूति है।' (वही)। प्रत्यक्षवाद द्वारा उत्पन्न विकल्प की असंभाव्यता के विचार को डी-कंस्ट्रकट करने में आलोचनात्मक चिंतन का महत्त्वपूर्ण योगदान है। इसके लिए स्वयं को तथा अन्यों को किन्हीं ऐतिहासिक स्थितियों में देखना जरूरी होता है। आलोचनात्मक होने के लिए यह मानना होता है कि जो है, वह 'दिया' गया है। और जो 'दिया' गया है वह किन्हीं के द्वारा दिया गया है। 'किसान जब समझ लेता है कि वह पराधीन है तभी अपनी पराधीनता पर विजय प्राप्त करने का साहस जुटाना शुरु करता है जबतक वह अपनी पराधीनता को

नहीं समझता, अपने मालिक का अनुसरण करता रहता है और कहता रहता है कि मैं क्या कर सकता हूँ? मैं तो सिर्फ एक किसान हूँ।' (वही: 23)

संवादात्मक होना, यानि आलोचनात्मक होना

आलोचनात्मक होने के लिए मनुष्य को विवेकीकरण की प्रक्रिया को आत्मसात करना होता है। तभी वह 'सामाजिक, आर्थिक तथा राजनैतिक अंतर्विरोधों' को समझ सकता/सकती है। किसी भी प्रकार के अन्तर्विरोध को समझना एक सामूहिक 'आचरण' है जिसके लिए मनुष्यों को 'चिंतन' और 'कर्म' में संलग्न होना होता है। 'संवाद' की प्रक्रिया मनुष्यों में 'आचरण' को स्पष्ट करती है। संवाद किसी अलौकिक की खोज करने के लिए नहीं, बल्कि इंसानी रिश्तों को समझने के लिए। 'संप्रेषण को बाधित करना मनष्यों को 'चीजों' में बदल कर रख देना है–और यह क्रांतिकारियों का नहीं उत्पीड़िकों का काम है।' (फ्रेरे–1997: 87)। जो ताकतें 'संवाद' करने पर रोक लगाती हैं या जो संवाद को अलौकिक की खोज की तरफ ले जाती हैं, वे इन्सान विरोधी ताकतें होती हैं।

'मनुष्य किसी अमूर्तन में नहीं बल्कि विश्व में संवादात्मक या संवादविरोधी होता है। ऐसा नहीं होता कि पहले वह संवाद विरोधी होगा और तब उत्पीड़क बनेगा, वह उत्पीड़क और संवादविरोधी एक साथ होता है।'(वही: 96)। संवाद विरोधी ताकतें, जोकि उत्पीड़क ताकतें होती हैं, संवाद को किसी गैर–जरूरी विषय पर लगाने की कोशिश करती हैं। इनका एक काम और भी होता है। यह ताकतें मनुष्य के दुनिया पर विचार कर सकने के ख्याल को खारिज करती हैं और उन पर अपना ख्याल आरोपित करती हैं। 'संवाद विरोधी कर्म में अभिजिति की इच्छा या आवश्यकता हमेशा मौजूद रहती है। इसके लिए उत्पीड़क लोग मनुष्यों के 'विश्व पर विचार करने के गुण' को नष्ट करने की कोशिश करते हैं। चूँकि वे मनुष्यों के इस गुण का संपूर्ण नाश नहीं कर सकते, इसलिए वे विश्व का मिथकीकरण करते हैं। वे उत्पीड़ितों और विजितों के विचारार्थ छल–कपट का एक ऐसा विश्व प्रस्तुत करते हैं, जो उत्पीड़ितों और विजितों के अलगाव तथा निष्क्रियता को और बढ़ाने की सृष्टि से 'बनाया गया' विश्व होता है। इसके लिए उत्पीड़क लोग पद्धतियों की एक श्रृंखला विकसित करते हैं, जिससे विश्व को कभी एक समस्या के रूप में प्रस्तुत न किया जा सके, बल्कि वह एक स्थिर चीज के रूप में–एक ऐसी प्रदत्त चीज के रूप में दिखाई पड़े, जिसे मनुष्य बदल न सकते हों, केवल देख सकते हों, और महज दर्शकों के रूप में जिसके अनुकूल स्वयं को बना लेना उनके लिए आवश्यक हो।' (वही)। संवाद के लिए असली विषयवस्तु को हाशिए पर धकेलने

के लिए संवाद विरोधी ताकतें विश्व का और संबंधों का मिथकीकरण करती हैं। इस मिथकों के जरिए वे मनुष्य-मनुष्य के आपसी रिश्तों की 'तकनीकी' व्याख्या प्रस्तुत करते हैं। मिथक सामाजिक सच्चाई को छिपाने के लिए गढ़े गये उपकरण हैं, जिनके जरिए ताकतवर के पक्ष में वातावरण निर्मित करना आसान हो जाता है। आलोचनात्मक होने का अर्थ मिथकों में पैठे झूठ और उत्पीड़न को उजागर करना भी होता है ।

'संवाद के लिए आलोचनात्मक चिंतन आवश्यक होता है और संवाद ही आलोचनात्मक चिंतन पैदा करता है। संवाद के बिना कोई संप्रेषण नहीं होता, और संप्रेषण के बिना कोई सच्ची शिक्षा नहीं हो सकती। शिक्षक-छात्र अंतर्विरोध का समाधान करने वाली शिक्षा में शिक्षक और छात्र, दोनों उस वस्तु का संज्ञान करते हैं, जो उनके बीच मध्यस्थता करती है। इस प्रकार शिक्षा का संवादात्मक चरित्र स्वतंत्रता का व्यवहार है। उसका यह चरित्र उस समय सामने नहीं आता, जब शिक्षक-छात्र एक शैक्षिक स्थिति में छात्रों-शिक्षकों से मिलते हैं। दरअसल, वह तब सामने आना शुरू करता है, जब शिक्षक-छात्र स्वयं से पूछता है कि छात्रा-शिक्षकों से उसका संवाद किस विषय में होगा। संवाद की अंतर्वस्तु की चिंता वास्तव में शिक्षा की कार्यक्रम-अंतर्वस्तु की चिंता है।' (वही: 53)। संवाद के लिए सही विषयवस्तु की तलाश एक जरूरी शर्त है इसलिए शिक्षाकर्मी को इस बात की चिंता करते रहनी चाहिए कि किन मुद्दों को केंद्र में रखकर बहस चलाई जा रही है। इस शोध-पत्र में जिन पाठों को उदाहरण के तौर पर चुना गया है, उन पर उनकी विषय-वस्तु को केंद्र में रखकर आलोचनात्मक प्रश्न उठाये गये हैं ।

सार रूप में यह कहा जा सकता है कि आलोचनात्मक होने के मायनों में 'दिए हुए' पर सवाल उठाना, संवादात्मक होने के लिए एक आवश्यक शर्त है। इसके तहत समस्या तथा घटनाओं को सीखने वाली ध्वालियों के ऐतिहासिक, आर्थिक, सांस्कृतिक तथा सामाजिक स्थितियों के साथ जुड़े अंर्तसंबंधों को समझना होता है। इस पर्चे के दूसरे हिस्से में उपर्युक्त संदर्भ में वर्तमान में पढ़ाई जा रही भाषा की पाठ्य-पुस्तक के एक पाठ का विश्लेषण किया गया है।

शिक्षा में आलोचनात्मक परिप्रेक्ष्य की संभावना

आलोचनात्मक परिप्रेक्ष्य पाठ्यपुस्तकों में किस तरह स्थान बना सकता है? पर्चे के इस हिस्से में पाठ की विषयवस्तु व उस विषयवस्तु से संबंधित प्रश्नों की बनावट को आलोचनात्मक परिप्रेक्ष्य में विश्लेषित किया गया है। इसके लिए राष्ट्रीय शैक्षिक अनुसंधान और प्रशिक्षण परिषद् (एन.सी.ई.आर.टी.) कक्षा 12 की हिंदी की पाठ्यपुस्तक 'अंतरा'

में फणीश्वर नाथ रेणु द्वारा लिखित कहानी 'संवदिया' का उदहारण लिया गया हैं। इस पर्चे के दोनों लेखकों का सरोकार साहित्यकार के रूप में रेणु और उनकी रचना 'संवदिया' को सवालों के घरे में लाना नहीं है। यह कहानी वर्तमान में राष्ट्रीय शैक्षिक अनुसंधान और प्रशिक्षण परिषद् द्वारा पाठ्यपुस्तक का हिस्सा बनाई गई है और स्कूलों में पढ़ाई जा रही है। दोनों लेखकों का सरोकार इस बात से है कि स्कूली ज्ञान का हिस्सा बना दिये जाने के बाद इस कहानी की विषयवस्तु के साथ शैक्षणिक सृष्टि से कैसा व्यवहार किया गया है। 'स्कूली ज्ञान में आलोचनात्मक समझ विकसित करने की सामर्थ्य हो, यह आवश्यक नहीं है।' (रावत–2016:74)। लेकिन इस कहानी में ऐसी बहुत–सी संभावनाएँ स्पष्ट रूप में विद्यमान हैं जिनका उपयोग विद्यार्थियों में आलोचनात्मक समझ विकसित करने हेतु किया जा सकता है।

संक्षेप में यह कहानी इस प्रकार है। 'संवदिया' एक ऐसे गाँव की कहानी है जहाँ एक बड़ी हवेली की बड़ी बहुरिया रहती थी। कुछ समय पहले बड़ी बहुरिया के पति का देहांत हो गया था। आज गाँव के संवदिया (एक ऐसा व्यक्ति जो एक गाँव से दूसरे गाँव तक लोगों के सन्देश पहुँचाता है) हरगोबिन को बड़ी बहुरिया ने बुलाया है। हरगोबिन बड़ी हवेली की टूटी ड्योढ़ी पार करके भीतर दाखिल होता है, और एक लम्बी सांस लेकर सोचने लगता है कि कैसे बड़े भैया (बड़ी बहुरिया के पति) के मरने के बाद उनके तीनों भाइयों अर्थात बड़ी बहुरिया के देवरों ने बड़ी बहुरिया से जेवर छीन लिए और सारी जमींन का बंटवारा कर दिया। वह सोचता है कि बड़ी बहुरिया अकेली कहाँ जाती बेचारी। बड़ी बहुरिया अब बस नाम भर की 'बड़ी हवेली' में ही रहती है। उसे अपने सारे काम खुद करने पड़ रहे हैं। अनाज साफ करने के लिए वह सूप फटकती है। यह देख संवदिया बहुत ही भावुक हो उठता है और उसकी आँखे छलक आती हैं। इसी बीच बड़ी बहुरिया संवदिया को देख लेती है और कहती है कि संवदिया उसके मायके जाए और उनकी माँ को खबर दे कि वह बहुत दुखी है। वह कहती है कि वह अब साग बथुआ खाकर कब तक जीवित रहेगी। वह संवदिया से कहती है कि वह जाकर उसकी माँ से कहे कि वे उसे इस जगह से निकाल कर अपने साथ ले जावे। यह सन्देश लेकर संवदिया बड़ी बहुरिया के मायके की तरफ चल देता है। संवदिया बड़ी बहुरिया से कह तो देता है कि वह सन्देश पहुँचाकर आएगा, परन्तु रास्ते भर वह यही सोचता रहता है कि बड़ी बहुरिया गाँव की लक्ष्मी है और अगर वह गाँव से चली गई तो गाँव की समृद्धि भी चली जाएगी। इस तरह के विचारों में डूबा हुआ संवदिया बड़ी बहुरिया के मायके

पहुँचता है, परन्तु वह बड़ी बहुरिया का संदेश बिना कहे ही वहाँ से वापस लौट आता है। वापस लौट कर संवदिया बड़ी बहुरिया से विनती करता है कि वह गाँव छोड़कर न जाए, क्योकि वह उस गाँव की लक्ष्मी है। वह उन्हें आश्वस्त करता है कि वह (संवदिया) उनका बेटा बनकर उनकी देखभाल करेगा।

पाठ्यपुस्तक में कहानी के अंत में निम्नलिखित प्रश्न दिए गए हैं:

1. संवदिया की क्या विशेषताएं हैं और गांववालों के मन में संवदिया की क्या अवधारणा है?
2. बड़ी हवेली से बुलावा आने पर हरगोबिन के मन में किस प्रकार की आशंका हुई?
3. बड़ी बहुरिया अपने मायके सन्देश क्यों भेजना चाहती थी?
4. हरगोबिन बड़ी हवेली पहुँच कर अतीत की किन स्मृतियों में खो जाता है?
5. संवाद कहते वक्त बड़ी बहुरानी की आँखें क्यों छलछला आई?
6. गाड़ी पर सवार होने के बाद संवदियां के मन में कांटे की चुभन का अनुभव क्यों हो रहा था। उससे छुटकारा पाने के लिए उसने क्या उपाय सोचा?
7. बड़ी बहुरिया का संवाद हरगोबिन क्यों नहीं सुना सका?
8. 'संवदिया डटकर खाता है और अफर कर सोता है' से क्या आशय है?
9. जलाल गढ़ पहुँचने के बाद बड़ी बहुरिया के सामने हरगोबिन ने क्या संकल्प लिया?

भाषा शिल्प

काबुली – कायद.....

रोम-रोम कलपने लगा.....

अगहनी धान.....

2 पाठ से प्रश्न वाचक वाक्यों को छांटिए और संदर्भ के साथ उन पर टिप्पणी लिखिए.

3 इन पंक्तियों की व्याख्या कीजिए –

क. बड़ी हवेली अब नाम मात्र को ही बड़ी हवेली है।

ख. हरगोबिन ने देखी अपनी आँखों से द्रोपदी की चीरहरण लीला।

ग. बथुआ-साग खाकर कब तक जीऊँ?

घ. किस मुहँ से वह ऐसा संवाद सुनाएगा ।

योग्यता विस्तार

1. संवदिया की भूमिका आपको मिले तो आप क्या करेंगे ? संवदिया बनने के लिए किन बातों का ध्यान रखना पड़ता है?
2. इस कहानी का नाट्य रूपांतरण कर विद्यालय के मंच पर प्रस्तुत करो।

शब्दार्थ और टिप्पणी

उपरोक्त सभी प्रश्न पाठ के अंत में दिये गये हैं. इस पाठ को पाठ्यपुस्तक में शामिल करने के लिए एन.सी.ई.आर.टी. की तरफ से जो तर्क दिया गया वह इस प्रकार है:

'जिस कथा धारा का प्रारंभ प्रेमचंद के यहाँ होता है उसका विकास रेणु के यहाँ मिलता है रेणु आंचलिकता के द्वारा जाने जाते हैं। संवदिया के माध्यम से रेणु ने ग्रामीण समाज की आंचलिकता, लोक-संस्कृति तथा लोक जीवन की पीड़ा को अभिव्यक्ति दी गई है। 21वीं सदी की चकाचौंध तथा भोग और उपभोग की संस्कृति के बीच गाँव अभी भी संस्कृतियों का रक्षक है। मानवीय रिश्तों की जो झलक गाँव में मिलती है शहर उससे कोसों दूर है'। (अंतरा-2007:9)।

आलोचनात्मक शिक्षणशास्त्र के परिप्रेक्ष्य को ध्यान में रखते हुए यहाँ इस पाठ का निम्न बिन्दुओं के अंतर्गत विवेचन किया गया है। यहाँ यह देखने का प्रयास किया गया है कि यह पाठ अपने पाठकों के सामने आलोचनात्मक होने की कितनी सम्भावना रखता है। विवेचन के यह बिंदु निम्नलिखित हैं–

- पितृसत्तात्मक व्यवस्था में स्त्री का स्थान
- आर्थिक स्वालंबन और स्त्री मुक्ति
- साहित्यक संवेदना और स्त्री मुक्ति
- विभिन्न लोकतांत्रिक संस्थाएं और पाठ्यपुस्तकों की विषयवस्तु के बीच संवाद।

पितृसत्तात्मक व्यवस्था में स्त्री का स्थान

बड़ी बहुरिया का पति मर चुका है इसलिए उसके ससुराल में कोई उसका सम्मान नहीं करता है। ससुराल वाले बड़ी बहुरिया पर तरह-तरह के अत्याचार करते हैं। पति की सम्पूर्ण सम्पति भी बड़ी बहुरिया से छीन ली गई है। बड़ी बहुरिया अपने ससुराल की हवेली में केवल दासी बनकर रह गई है। इस स्थिति में बड़ी बहुरिया अब अपने

ससुराल में नहीं रहना चाहती है। वह अपनी माँ के घर जाना चाहती है। बड़ी बहुरिया ने निर्णय ले लिया है की अब वह ससुराल में मिलने वाले कष्टों को और सहन नहीं करेगी। हालांकि वह यह भी जानती है कि मायके में भी उसे कोई सम्मान नही मिलेगा। वहाँ भी उसे अपने भाई-भाभी की नौकरी करके ही गुजारा करना पड़ेगा। वह फिर भी अपना ससुराल छोड़ना चाहती है। निम्नलिखित नीचे उद्धरण में बहुरिया, हरगोबिन से कहती है कि:

''और कितना बड़ा करूँ दिल?...माँ से कहना, मैं भाई-भाभियों की नौकरी करके पेट पालूंगी। बच्चों की झूठन खा कर एक कोने में पड़ी रहूँगी, लेकिन यहाँ नहीं रह सकूँगी। .. .कहना, यदि माँ मुझे यहाँ से नहीं ले जाएगी तो मैं किसी दिन गले में घड़ा बांधकर पोखरे में डूब मरूँगी। ... बथुआ-साग खा कर कब तक जीऊँ और किसलिए... किसके लिए?'' (वही:104)।

यह संदर्भ उस परिदृश्य को चित्रित करता है जिसकी जड़ें भारतीय समाज की पितृसत्तात्मक व्यवस्था में निहित है, जहाँ पति के मरने के पश्चात् स्त्री का कोई अस्तित्व ही नहीं होता। यह कहानी समाज में स्त्री की उन दशाओं को चित्रित करती है जहाँ स्त्री या तो उत्पीडन सहे या फिर मृत्यु को गले लगा ले।

एक अन्य संवाद में हरगोबिन कहता है 'बड़ी बहुरिया का तो सारा गाँव ही परिवार है। हमारे गाँव की लक्ष्मी बड़ी बहुरिया....गाँव की लक्ष्मी गाँव को छोड़कर शहर कैसे जाएगी?' (वही:108)। स्त्री को हमेशा लक्ष्मी के रूप में चित्रित कर घर के भीतर ही सहेज कर रखा जाता है और यह माना जाता है कि दूसरों अर्थात पुरुषों को उसकी रक्षा करनी है। सम्मान की तमाम जिम्मेदारी उस पर लादकर उसे सदैव घर के सीमित दायरों में ही सिमेट दिया जाता है। उसे कभी स्वयं के लिए बने इन दायरों से निकलने और उन से इतर की दुनिया के बारे में जानने के लिए अवसर ही नहीं दिए जाते। इन दायरों में सिमटी स्त्री कभी स्वयं की स्वावलंबी शक्तियों को पहचान ही नहीं पाती वह हमेशा दूसरों की अधीनता में जीवनयापन और शोषण को ही अपनी नियति मान लेती है।

यदाकदा कभी ऐसी स्थिति बन जाती है कि वह इन दायरों से कुछ हद तक कही निकलने की सोचती भी है, तो कोई-न-कोई पुरुष उसके 'लक्ष्मी' रूप को बनाए रखने के मकसद से उसे सहारा देने चला आता है। जैसे हरगोबिन के इन शब्दों से ज्ञात होता है ''बड़ी बहुरिया!... मुझे माफ करो। मैं तुम्हारा संवाद नहीं कह सका...। तुम गाँव छोड़कर मत जाओ। तुमको कोई कष्ट नहीं होने दूंगा। मैं तुम्हारा बेटा! बड़ी बहुरिया, तुम

मेरी माँ सारे गाँव की माँ हो! मैं अब निठल्ला बैठा नहीं रहूँगा। तुम्हारा सब काम करूँगा. ..बोलो, बड़ी माँ, तुम गाँव छोड़कर चली तो नहीं जाओगी? बोलो...!' (वही: 110)। यह पूरा संवाद इस बात की ओर संकेत करता है कि स्त्री अकेले स्वयं को नहीं संभाल सकती। उसे स्वयं के जीवन के लिए जीवन के प्रत्येक स्तर पर किसी न किसी रूप में पुरुष का सहारा चाहिए ही।

इस पाठ में संबंधित प्रश्नों पर यदि गौर किया जाए तो हम देख सकते हैं कि इसमें दिए गए प्रश्न भी विद्यार्थियों को न तो व्यवस्था की जड़ों को टटोलने के अवसर देते हैं और न ही उन पर बहस करने का अवसर। इसके उलट पाठ पर दिए गए प्रश्न, पाठ में दी गई जानकारी को स्मरण और दोहराव से पुष्ट ही करते हैं। अप्रत्यक्ष रूप से पाठ के प्रश्न समाज में व्याप्त स्थितियों को ही मान लेने का वातावरण रचते हैं, जहाँ पितृसत्तात्मक व्यवस्था में स्त्री के स्वतन्त्र अस्तित्व को स्वीकार नहीं किया जाता।

इस कहानी में यह प्रसंग आया है कि बड़ी बहुरिया अपने माता के यहाँ जाने के बाद भी 'कोने में पड़े रहने' की स्थिति में ही होगी। अपने पिता के घर जाने के उपरांत भी वह अपने भाइयों की चाकरी करके ही पेट भर पायगी। बड़ी बहुरिया के लिए पति के उपरांत अपने पिता और भाई का ही घर है जहाँ वह जा सकती है। परन्तु वहाँ भी उसे घर के अतिरिक्त बोझ की तरह ही देखा जायेगा। बड़ी बहुरिया अपने पिता के यहाँ भी सम्मान व स्वावलंबी जीवन व्यतीत नहीं कर पायेगी। इस पाठ का कोई भी प्रश्न उन जड़ताओं पर बात नहीं करता है, जिनकी वजह से समाज में स्त्री की ऐसी स्थिति हो जाती है कि वह किसी पुरुष के संरक्षण के बिना सम्मानजनक और स्वावलंबी जीवन व्यतीत क्यों नहीं कर सकती।

शिक्षा का अन्य लोकतांत्रिक संस्थाओं के साथ संवाद

सन 2005 में सर्वोच्च न्यायालय ने हिन्दू उत्तराधिकार अधिनियम की धारा छ:(6) में संशोधन कर दिया। इस संशोधन के अनुसार 17 जून, 1956 तथा उसके बाद जन्मी लड़की का उसके पिता की संपत्ति पर बराबर का हक है। बशर्ते लड़की 9 सितम्बर 2005 को या उसके बाद जीवित रही हो। इस कहानी के माध्यम से विद्यार्थियों के साथ उन कानूनों को साझा किया जा सकता है जो सम्पति पर स्त्री और पुरुष को समान अधिकार देने के उद्देश्य से बनाए गए हैं। पारंपरिक मान्यताओं के अनुसार बड़ी बहुरिया अपने पिता की सम्पति पर अपने हक का दावा नहीं कर सकती है। परन्तु इस कहानी को 2007 में पाठ के रूप में शामिल किया गया और विद्यार्थी इस पाठ को 2016 में पढ़

रहें या रही हैं। लेकिन पाठ का कोई भी प्रश्न विद्यार्थियों को यह सोचने का अवसर नहीं देता है कि 'यदि बड़ी बहुरिया को सम्पति संबंधी कानूनी अधिकारों के बारे में पता होता तो वह क्या कर सकती थी? या यदि वह सम्पति पर अधिकार संबंधी कानून का उपयोग करती तो उसकी स्थिति में क्या अंतर आता? एक लोकतांत्रिक प्रणाली में शिक्षा का एक प्रमुख लक्ष्य यह भी होना चाहिए कि कक्षा प्रक्रिया को विभिन्न सामाजिक-सांस्कृतिक स्थितियों में संदर्भित किया जाए। लोकतंत्र की विभिन्न संस्थाओं के बीच संवाद स्थापित करना भी मुद्दों को संदर्भित करने का एक तरीका है। परन्तु, संवदिया पाठ की कहानी के विशेष संदर्भ में देखें तो हम पाएंगे कि स्कूल की व्यवस्था और भाषा का यह पाठ्यक्रम, न तो लोकतंत्र की अन्य शाखाओं द्वारा उपलब्ध करवाए जा रहे प्रावधानों की चर्चा करता है और न ही व्यापक स्तर पर छात्र और छात्राओं को इस तरह का संवाद करने का अवसर उपलब्ध करवाता है जहाँ वे साहित्य में व्याप्त सामाजिक संबंधों को बदलती व्यवस्थाओं के साथ जोड़कर देख सके। पाठ स्त्री के दमन के कारणों को समझने में और दमन से मुक्ति देने वाले लोकतांत्रिक प्रावधानों के बारे में जान सकने में विद्यार्थियों की कोई मदद नहीं करता।

गीरू अपने एक साक्षात्कार में कहते हैं कि 'शिक्षा ऐसी होनी चाहिए जो लोकतांत्रिक दायरों में एक व्यक्ति को ऐतिहासिक, समाजशास्त्रीय और तार्किक रूप से विचार करने के साथ-साथ एक जिम्मेदार नागरिक भी बनाये।'(गीरू-2015:1)।

इस पाठ के विशेष सन्दर्भ में देखें तो हम कह सकते या सकती हैं कि जब-तक शिक्षा लोकतान्त्रिक मूल्य-व्यवस्था के भीतर मनुष्य में तार्किक विचारों को उत्पन्न नहीं कर सकती, वह तब-तक समाज की अन्य संस्थाओं के साथ संवाद कायम नहीं कर सकती। क्योंकि 'मौलिक रूप से शिक्षा का अर्थ है, एक आलोचनात्मक एजेंट की संलग्नता। अगर आप के पास ऐसी संस्था नहीं है जो जागृत नागरिक सृजित कर सके तो आप लोकतांत्रिक नहीं हैं। (गीरू-2015)। इस संदर्भ में पाठ की इस सीमा को देखा जा सकता है। पाठ के जरिए छात्र/छात्राओं के सामने सूचनाओं को इस तरह से नहीं रखा जा रहा है कि वे शिक्षा व समाज के व्यापक संबंध को समझ पाएँ। पाठ के सवाल उन मान्यताओं को सवालों के घेरे में नहीं लाते हैं जो यथा-स्थिति को बनाये रखने में सहायक होती हैं। पाठ 'यथा-स्थिति' के कारणों पर संवाद करने से बच निकला है। चूँकि हम एक 'लोकतान्त्रिक' व्यवस्था में हैं और शिक्षा की लोकतान्त्रिक शैली को अपनाने का प्रयास कर रहें हैं इसलिए आवश्यक है कि शिक्षा व शिक्षण में लोकतंत्र की विभिन्न

संस्थाओं के बीच संवाद स्थापित हो। परंतु शिक्षा में लोकतांत्रिक विचार तब तक कायम नहीं हो सकता जब तक की शिक्षण संस्थाओं में संवाद को प्रोत्साहित नहीं किया जाता। लोकतंत्र एक संवाद है। विभिन्न सामाजिक, सांस्कृतिक, आर्थिक, राजनैतिक आदि स्थितियों में संवाद- स्थितियों के प्रति बदलती समझ संवाद को गति देती है।' (रावत.2016:78)।

स्त्री मुक्ति और आर्थिक स्वावलंबन

इस पाठ में यदि तीसरे बिंदु को देखे जिसमे हम यह पैरवी कर रहें है कि 'आर्थिक स्वावलंबन से ही तमाम तरह की गुलामियों व उत्पीड़िनों से मुक्ति संभव है। इस पाठ में एक संवाद आता है यह संवाद यह दर्शाता है कि बड़ी बहुरिया के सामने मुक्ति के दो ही रास्ते बचे हैं एक अपने भाई-भाभियों की चाकरी और दूसरा है मृत्यु। कहानी में यह संवाद इस प्रकार है 'मै भाई-भाभियों की नौकरी करके पेट पालूँगी। बच्चों की झूठन खा कर एक कोने में पड़ी रहूँगी, लेकिन अब यहाँ नहीं रह सकूँगी। कहना, यदि माँ मुझे यहाँ से नहीं ले जाएगी तो मैं किसी दिन गले में घड़ा बांधकर पोखरे में डूब मरूंगी ... बथुआ साग खा कर कबतक जीऊँ और किसलिए ...किसके लिए?' (वही:104)। क्या इस पाठ के प्रश्न की संरचना में कही इस बात की गुंजाइश हो सकती थी, जो छात्र/छात्राओं का ध्यान इस बात की ओर दिला सके कि यदि बड़ी बहुरिया शिक्षित होती और आर्थिक रूप से स्वावलंबी होती तो दृश्य कैसा होता? या वह समाज में यदि एक शिक्षित व स्वावलंबी महिला होती तो क्या तब भी उसकी दशा ऐसे ही 'दयनीय' होती? उपरोक्त प्रसंग भारतीय समाज में व्याप्त स्त्री के एक ऐतिहासिक चारित्रिक गुण जिसमें उससे यह अपेक्षा की जाती है कि 'वह हमेशा दूसरों (पुरुष) पर ही निर्भर रहेगी' को पुष्ट करता है। इस पाठ के प्रश्नों में इन मान्यताओं पर विचार करने के अवसर दिए जा सकते थे परन्तु इस पाठ के अंत में दिए गए अभ्यास प्रश्नों में ऐसे अवसर कहीं भी दिखाई नहीं पड़ते। इस तरह यह पाठ प्रत्यक्षवाद की 'भोक्ता' बने रहने की संस्कृति को पुष्ट करता है। बड़ी बहुरिया के चरित्र के साथ पाठ में जिस तरह का बर्ताव किया गया है वह विद्यार्थियों को, विशेषकर लड़कियों को, दी गई स्थितियों का 'भोक्ता' बने रहने की ओर ले जाता है। जबकि प्रश्नों में बड़ी बहुरिया के 'कर्ता' रूप की संभावनाओं की विवेचना की जा सकती है। जहाँ विद्यार्थी सामाजिक, सांस्कृतिक, राजनैतिक और आर्थिक अन्तर्विरोध को समझकर यथार्थ में व्याप्त उत्पीड़न के तत्वों (आर्थिक रूप से गुलाम बने रहने की प्रवृति) को रेखांकित कर सकते हैं। परंतु प्रश्नों का 'तकनीकी' होना कक्षा में

'विवेकीकरण' की स्थिति निर्मित नहीं होने देता और प्रत्यक्षवादी ढंग से छात्र-छात्राओं को राजनैतिक व सामाजिक खामोशी की ओर ले जाता है।

साहित्यिक संवेदना और स्त्री मुक्ति

इस पाठ पर यदि साहित्यक संदर्भों में एक दृष्टि डाले तो यह उचित है कि साहित्य की अपनी एक भाषा, एक संदर्भ, संस्कृति और एक संवेदना होती है। इस कहानी में भी मानवीय संवेदना को चित्रित किया गया है। इस बात से इंकार नहीं किया जा सकता है कि प्रेम की अपनी-अपनी अभिव्यक्ति और रूप होते हैं। इस पाठ में हरगोबिन (संवदिया) का बड़ी बहुरिया के प्रति जो मानवीय प्रेम है वह अभिव्यक्ति का ही एक रूप है। जिसे इस कहानी में खूबसूरती से चित्रित किया गया है। परन्तु प्रश्न यह उठता है कि क्या साहित्य में दी गई संवेदनाओं को मानक बना दिया जाना चाहिए? क्या साहित्य में चित्रित संवेदनाओं की विवेचना की जानी चाहिए? या फिर साहित्यक अभिव्यक्तियों को ही सर्व मान्य बना देना चाहिए?

साहित्य में किसी व्यक्ति द्वारा किसी अन्य के प्रति व्यक्ति की गई संवेदना का महत्त्व होता है। लेकिन क्या शिक्षा का लक्ष्य केवल साहित्य में चित्रित विश्व में निर्वाह करना सिखाना होना चाहिए या फिर परम्परा में व्याप्त दमनकारी प्रवृतियों पर प्रश्न करने और उन्हें बदलने का भी होना चाहिए? एक व्यक्ति अपने स्तर पर किसी व्यक्ति के लिए संवेदना रख सकता/सकती है। परन्तु क्या एक व्यक्ति के प्रयास से, राज्य की भूमिका को नजरंदाज किया जाना चाहिए? क्या हरगोबिन की भलमनसाहत या दया के भाव के जरिये विद्यार्थियों में वैसी स्त्रियों के प्रति संवेदना विकसित की जा सकती है जो समाज में बड़ी बहुरिया जैसा अन्याय और उत्पीड़न झेल रही हैं। संभवत: नहीं! ऐसी स्थिति में किसी समाजवादी-लोकतांत्रिक राज्य में शिक्षा की क्या भूमिका होनी चाहिए? ऐसे राज्य में शिक्षा की भूमिका यह होनी चाहिए कि वह नागरिकों को 'दिए गए' ज्ञान पर बहस करना और उससे बेहतर विकल्प तलाशना सिखाए। यह काम आलोचनात्मक चिंतन के रास्ते पर चलकर किया जा सकता है। क्योंकि आलोचनात्मक चिंतन, व्यक्ति को 'दिए गए' ज्ञान में ढलने के व्यवहारवादी विमर्श से अलग ऐतिहासिक चेतना के साथ जीने के लिए प्रेरित करता है।

एक अन्य प्रसंग में हरगोबिन को बड़ी बहुरिया की दयनीय दशा पर दुखी होते हुए दिखाया जाता है यहाँ हरगोबिन इस बात को लेकर चिंतित है कि 'इन हाथों में सिर्फ मेहंदी लगाकर ही गाँव की नाइन परिवार पालती थी। कहाँ गए वे दिन? हरगोबिन ने

लम्बी सांस ली'। (वही:103)। हरगोबिन जानता है कि नाइन के घर का खर्च सामंत की पत्नी के हाथों में मेहंदी लगाने से होने वाली आमदनी से चल जाता था। एक तरफ नाइन है जो मजूरी करके अपने और अपने परिवार का पेट पालती है। दूसरी तरफ सामंत की पत्नी है, जो हाथों में मेहंदी रचवाकर बिना श्रम के जीवन जीती थी। हरगोबिन की संवेदना नाइन के साथ न होकर सामंत की पत्नी के साथ है। हरगोबिन की यह पीड़ा सामंतवादी वर्चस्व से ग्रसित मानसिकता को चित्रित करती है। इस बात पर गौर करना होगा कि झाड़ू लगाने एवं सूप फटकने का यह काम जो बड़ी बहुरिया कर रही है वह कोई ऐसी महिला करती जो बडी हवेली की तरह किसी संभ्रांत परिवार से न होती तो भी क्या हरगोबिन को इतना ही बुरा लगता! नाइन परिवार में काम कर रही है तो हरगोबिन को कोई दु:ख नहीं होता। परन्तु संभ्रांत परिवार की एक स्त्री को घर के काम करने पड़ रहे हैं तो हरगोबिन गहरी चिंता से घिरे जा रहे हैं। यहाँ हरगोबिन 'वर्चस्व' से ग्रसित एक ऐसे व्यक्ति की भूमिका में है जो संभ्रांत को संभ्रांत ही देखना चाहता है और उसकी संभ्रांतता को बनाये रखने में अपना योगदान देना चाहता है। उपर्युक्त संदर्भ में पाठ के सवाल हरगोबिन के वर्चस्व से ग्रसित चरित्र को समझने में मदद कर सकते थे, जो विद्यार्थियों को हरगोबिन के माध्यम से अपने भीतर बसी हुई वैचारिक वर्चस्व की अधीनता को पहचानने में मदद कर सकती थी।

संदर्भ

फ्रेरे पाउलो (2010), *उम्मीदों का शिक्षाशास्त्र,* ग्रन्थ शिल्पी, दिल्ली.

फ्रेरे पाउलो (1997), *उत्पीड़ितों का शिक्षाशास्त्र,* ग्रन्थ शिल्पी, दिल्ली.

राष्ट्रीय शैक्षिक अनुसंधान और प्रशिक्षण परिषद् (2006), *अंतरा* (भाग एक), कक्षा ग्यारह, दिल्ली.

गीरू, हेनरी (2014), *संस्कृति कर्मी और शिक्षा की राजनीति,* ग्रन्थ शिल्पी, दिल्ली.

सिंह, बीरेंद्र रावत (2016), *भाषा-शिक्षण की आलोचनात्मक दृष्टि,* यश प्रकाशन.

गीरू, हेनरी (2015), एन इंटरव्यू विद हेनरी गीरू, Thepolitic-org-retrieved on 9-12-15-

राष्ट्रीय शिक्षा नीति 1986, शिक्षा विभाग, मानव संसाधन विकास मंत्रालय. भारत सरकार.

बोटोमोर, टोम (2007), दि फ्रैंकफर्ट स्कूल एंड इट्स क्रिटिक्स, रुटलेज, लंदन और न्यू योर्क.

एडर्नो, टी.डब्ल्यू (2006), *संस्कृति उद्योग,* ग्रन्थ शिल्पी, दिल्ली.

परिप्रेक्ष्य
वर्ष 23, अंक 3, दिसंबर 2016

शोध टिप्पणी/संवाद

अध्यापक शिक्षा एवं प्रशिक्षण की आवश्यकता और मौजूदा व्यवस्था

दामोदर जैन*

सारांश

यह सर्वविदित है कि शिक्षा की गुणवत्ता पर शिक्षक और शिक्षक प्रशिक्षकों की भूमिका का सीधा प्रभाव पड़ता है। जैसा प्रशिक्षण – वैसा शिक्षण। देश में शिक्षक–प्रशिक्षण के संदर्भ में सर्वोच्च संस्था एन.सी.ई.आर.टी. की स्थापना–काल से लेकर वर्तमान तक शिक्षक –प्रशिक्षण की अनेक कार्य–योजनाएँ बनीं और उनके संचालन हेतु सभी क्षेत्रों में शिक्षण –प्रशिक्षण संस्थाओं की स्थापना की गई। एन.सी.टी.ई. की स्थापना उपरान्त देशभर में शासकीय अध्यापक शिक्षण–संस्थानों के मुकाबले निजी अध्यापक–शिक्षण–संस्थानों की संख्या बढ़ती ही जा रही है। अनेक विश्व विद्यालयों में शिक्षा विभाग सृजित किए जा रहे हैं, जबकि अध्यापक–शिक्षा का विश्व विद्यालय अभी तक नहीं बनाया गया है। प्रशिक्षित शिक्षकों की उपलब्धता संबंधी महत्त्वपूर्ण शर्त शिक्षा का अधिकार कानून के प्रावधानों में होने के बावजूद अभी भी निजी संस्थानों के शिक्षकों का अधिकांश अप्रशिक्षित रह जाना सभी का चिन्ता का विषय बना हुआ है। एनसीएफ के अनुसार अभी भी पेशेवर शिक्षक–प्रशिक्षक तैयार करने का कोई स्थापित तन्त्र नहीं है। एम.एड. जैसे शिक्षण–प्रशिक्षण पाठ्यक्रम बजाए किसी गहरे शोध के विश्वविद्यालय के उदार अध्ययन के विषय मात्र बनकर रह गए हैं। यह स्कूली शिक्षा के मुख्य क्षेत्रों, जैसे:– पाठ्यचर्या निर्माण,

*राज्य शिक्षा केन्द्र, मध्य प्रदेश, भोपाल

शिक्षण और स्कूल एवं समाज, से जुड़े मुद्दों के संबंध में पेशेवर दक्षता या शोध के अवसर नहीं देते हैं।)

प्रस्तावना

अध्यापक शिक्षा पर सर्वत्र विचार मंथन जारी है। राष्ट्रीय स्तर पर मानव संसाधन एवं विकास मंत्रालय सहित सभी शैक्षिक संस्थाएँ, शिक्षा से जुड़े शासकीय और गैर सरकारी संगठनों सहित औद्योगिक घराने भी अब अध्यापक शिक्षा में रुचि प्रकट कर रहे हैं। विचार के स्तर पर तो यह स्थिति श्रेष्ठतम नजर आती है लेकिन कार्य और उसके परिणामों से अभी कोई भी संतुष्ट नजर नहीं आता। जिन प्रशिक्षण संस्थाओं में अध्यापक प्रशिक्षण प्राप्त कर रहे हैं उनका वातावरण बहुत ज्यादा प्रभावी नहीं है। वर्ष 2008 में ज्ञान आयोग के प्रतिवेदन में स्पष्ट लिखा गया था कि **''अभी भी देश में योग्य और प्रेरित शिक्षकों की बहुत कमी बनी हुई है।''** आयोग के अध्यक्ष सैम पित्रौदा ने देशभर में शिक्षक-प्रशिक्षकों पर विशेष ध्यान देने की जरूरत बताई थी। नई शिक्षा नीति 1986 और इसकी कार्य योजना 1992 में भी शिक्षक प्रशिक्षण को प्रभावी और परिणाम मूलक बनाने की जोरदार सिफारिश की गई थी। 1995 में एन.सी.टी.ई. बन जाने के बाद ऐसी संभावना व्यक्त की जा रही थी कि अध्यापक शिक्षा में प्रभावी परिवर्तन होगा, किन्तु यह संभव नही हो सका, उल्टे शिक्षा महाविद्यालयों की संख्या में भारी वृद्धि होने से अब अध्यापक प्रशिक्षण के पाठ्यक्रमों और उनकी डिग्रियों पर तरह-तरह की शंकाएं की जाने लगी हैं। कुछ समय पूर्व तो एन.सी.टी.ई. को भंग किए जाने संबंधी निर्णय लिए जाने की सूचना मिलने लगी थी।

एनसीईआरटी द्वारा वर्ष 2005 में तैयार किए गए एक महत्वपूर्ण दस्तावेज, राष्ट्रीय पाठ्यचर्या प्रारूप 2005 के अनुसार- **''वास्तव में हमें चिंतनशील शिक्षकों की आवश्यकता है। ऐसे शिक्षक जो बच्चों की वास्तविक अपेक्षाओं को मनोयोग-पूर्वक पूरा कर सकें।''** शिक्षा का अधिकार कानून 2009 में भी जिस तरह की अपेक्षाएँ शिक्षकों से की गई है उन्हें पूरा करने वाले शिक्षकों की पूर्ति प्रभावी शिक्षक-प्रशिक्षण से ही संभव हो सकती है, अत: अब हमें शिक्षक प्रशिक्षण को प्रभावी बनाने पर विशेष ध्यान देना चाहिए। स्वयं अपनी क्षमताओं पर भरोसा खो देने वाला शिक्षक समुदाय वर्तमान में कुंठित और निराश होता जा रहा है। ऐसे समूह को संभालने के लिये शुरुआती पहल करने वाले अध्यापक प्रशिक्षण संस्थानों का नेतृत्व अभी भी अब प्रशासनिक

अधिकारियों के हाथों में है। अपनी दूषित कार्यप्रणाली से शिक्षकों के मन को व्यथित कर देने वाली प्रक्रियाएं संचालित करने वाले प्रशासनिक वर्ग के अधिकारियों की मनमानी को अध्यापक मन मसोस कर सह तो लेते हैं, पर वे इसका बदला बच्चों को सही ढंग से न पढ़ाकर लेते हैं।

अध्यापक शिक्षा की आवश्यकता

अभी हाल ही में देश के मानव संसाधन विकास मंत्री ने देश के सभी स्कूलों में प्रशिक्षित शिक्षकों की उपलब्धता को सुनिश्चित करने हेतु संसद में विधेयक लाने संबंधी वक्तव्य जारी किया है। वे चाहते हैं कि 2019 तक सभी स्कूलों में पढ़ाने वाले लोग यानि शिक्षक प्रशिक्षित हो जाएँ। उनकी इस घोषणा का एक निहितार्थ यह भी है कि अभी जो लोग स्कूलों में पढ़ा रहे हैं, वे प्रशिक्षित नहीं हैं। यह स्थिति तब है जबकि देश में लगभग एक दशक पूर्व शिक्षा का अधिकार कानून 2009 लागू हो चुका है जिसमें 01 अप्रेल 2010 से तीन वर्ष की अवधि में सभी को प्रशिक्षित किए जाने संबंधी नियम बनाया गया था। मूल प्रश्न यह है कि क्या देश में शिक्षण-प्रशिक्षण प्राप्त लोगों की कमी है या प्रशिक्षित होते हुए भी लोगों को स्कूलों में काम करने का मौका नहीं दिया जा रहा है? यक्ष प्रश्न यह है कि देश भर में शिक्षक-प्रशिक्षण हेतु कार्यरत सरकारी और निजी संस्थानों के माध्यम से प्रतिवर्ष लाखों लोग प्रशिक्षण प्राप्त करने के बावजूद, आखिर संसद में विधेयक लाने की जरूरत क्यों आ पड़ी है ? एक जानकारी के अनुसार देश भर में लगभग 80 लाख से अधिक शिक्षक कार्यरत हैं, जबकि जरूरत एक करोड़ शिक्षकों की है। लगभग 15 लाख शिक्षकों के पद अभी भी खाली हैं। माननीय मंत्री जी की घोषणा के परिप्रेक्ष्य में विचार करना होगा कि क्या रिक्त पदों पर भर्ती होने वाले लोगों में अप्रशिक्षितों को भी अवसर दिया जाने वाला है और इसी कारण 2019 तक की समयावधि लक्षित की गई है। जो भी हो यह स्पष्ट है कि अब स्कूलों में पढ़ाने वाले शिक्षकों का प्रशिक्षित होना उसी तरह अनिवार्य मान लिया गया है, जिस तरह देश के न्यायालयों में अधिवक्ताओं, चिकित्सालयों में चिकित्सकों और निर्माण संबंधी कार्यों में अभियन्ताओं सहित प्रबंधन कार्यों में प्रबंधन संबंधी प्रशिक्षण प्राप्त करना अनिवार्य माना गया है।

यह सर्वमान्य है कि किसी भी पाठ्यचर्या की सफलता अंतत: कक्षा में पढ़ाने वाले शिक्षकों पर निर्भर होती है। अत: यह आवश्यक है कि शिक्षक अपनी भूमिका को भली भांति निभाएँ। **एक अच्छा शिक्षक वह है जो कक्षा शिक्षण के दौरान बच्चों के लिए सीखने की परिस्थितयों का निर्माण करता है और प्रत्येक बच्चे को सीखने की**

प्रक्रिया में सहभागी होने का अवसर देता है। वह बच्चों को सक्रिय गतिविधियों के माध्यम से स्वयं करके तथा एक दूसरे से सीखने को प्रेरित करता है।

ऐसे गुणों और व्यवहारों से युक्त शिक्षक ही अपने उत्तरदायित्वों का ठीक से पालन करते हुए, बच्चों को गुणवत्तायुक्त शिक्षा उपलब्ध करा सकते हैं। एक अभिप्रेरित शिक्षक, अपने कक्षा-शिक्षण व्यवहार को समय की पाबंदी, नियमितता, समानता, कर्तव्यनिष्ठा, अनुशासन, और सामाजिक संबंध के माध्यम से बेहतर बना सकता है। हमारे वर्तमान शिक्षक-प्रशिक्षणों की प्रमुख समस्याओं और चुनौतियों को व्यवस्थित ढंग से समझने और उनका समाधान करने की आज महती जरूरत है ताकि सभी शिक्षक सभी बच्चों को शिक्षा का मौलिक अधिकार सुनिश्चित कर सकें।

यदि हम चाहते हैं कि शिक्षा अधिकार कानून की मूलभावना के अनुरूप बच्चो को शिक्षा का मौलिक अधिकार वास्तव में मिल जाए तो हमें इस मनोभावना को शिक्षक-प्रशिक्षण के जरिए शिक्षक के मन में प्रबल बनाना चाहिए। शिक्षण-प्रशिक्षण का कार्य अत्यंत महत्वपूर्ण है जिसे संस्थागत् सहयोग के रूप में किया जाना चाहिए। श्रेष्ठ प्रशिक्षण संस्थाएँ वे नहीं हैं जो विपुल संसाधनयुक्त हैं बल्कि उनकी श्रेष्ठता उनके कार्यों से प्रतिबिम्बित हो सकती है।

शिक्षा की गुणवत्ता के परिप्रेक्ष्य में अध्यापक शिक्षा की प्रभाविता सर्वत्र स्वीकार्य है। यह अनुभूत सत्य है कि जैसी अध्यापक शिक्षा होगी अर्थात शिक्षकों का प्रशिक्षण होगा वैसा ही कक्षाओं में शिक्षण होगा। जैसा प्रशिक्षण - वैसा शिक्षण, ऐसा यथार्थ है जिसे सबने सही माना है। इसीलिए अध्यापक शिक्षा पर अब विशेष ध्यान दिया जा रहा है। भारत सरकार के लिए अध्यापक शिक्षा की गुणवत्ता में सुधार के लिए राष्ट्रीय अध्यापक शिक्षा परिषद की स्थापना के बाद वर्ष 2012 में अध्यापक शिक्षा मिशन बनाया गया है। अब देश भर में एनसीटीई द्वारा स्थापित मापदण्डों के अनुरूप ही अध्यापक शिक्षा संस्थान कार्य रहे हैं।

मानव संसाधन विकास मंत्रालय की पूर्व सचिव अंशु वैश्य के अनुसार ''यह जानी मानी बात है कि बच्चों के दिमाग को गढ़ने में शिक्षक महत्वपूर्ण भूमिका अदा करते हैं और पर्याप्त संख्या में योग्य व प्रशिक्षित शिक्षकों की उपलब्धता अच्छी शिक्षा की कुंजी है।'' उनका यह वक्तव्य शिक्षक विकास एवं प्रबंधन पर केन्द्रित अन्तर्राष्ट्रीय सम्मेलन उदयपुर की रिपोर्ट के प्राक्कथन में विशेष रूप से प्रकाशित किया गया। इस सम्मेलन में देश-विदेश के मान्य शिक्षाविदों, प्रशासकों और प्रबंधकों ने सहभागिता की थी। इस

सम्मेलन में अनेक महत्वपूर्ण विचारों के साथ अध्यापक शिक्षा से संबंधित 9 प्रमुख संदेश उभरे जो इस प्रकार हैं :

1. अध्यापक शिक्षा की एक समग्र नीति व क्रियान्वयन की रणनीति मय चिह्नित संसाधन तैयार हो,
2. अध्यापक शिक्षा (सेवा पूर्व एवं सेवाकालीन) यथाशीघ्र राष्ट्रीय पाठ्यचर्या की रूपरेखा के अनुरूप बने।
3. शिक्षकों को काम करने की अनुकूल परिस्थितियाँ तत्काल प्रदान की जाएं।
4. शिक्षकों के प्रदर्शन के मानक भारतीय संदर्भों में विकसित किए जाने चाहिए और इनका विकास शिक्षकों व उनके प्रतिनिधियों की सलाह पर हो।
5. भारत शिक्षकों के विकास हेतु संस्था केन्द्रित, समग्र और भलीभांति वित्त पोषित योजना बनाए। यह योजना जीवनपर्यन्त हो, माँग पर आधारित हो, बढ़ते क्रम में स्कूल आधारित हो और प्रशिक्षण मॉडल के संदर्भ में नवाचारी हो। यह हाल के सेवाकालीन प्रशिक्षण के कार्यक्रम केन्द्रित व वित्तचालित नजरिए से आगे जाए।
6. गुणवत्ता सुधार के लिए एक समग्र व सर्वसमावेशी नजरिए की जरुरत है, जो छात्रों के सीखने पर केन्द्रित हो और इसमें प्रभावी शिक्षक व प्रभावी स्कूल सुनिश्चित करने के लिए अध्यापक शिक्षकों और शैक्षिक नेतृत्व को सुदृढ़ बनाने की बात पूरी तरह शामिल हो।
7. अध्यापक शिक्षण व स्कूल शिक्षा के लिए जिम्मेदार संस्थाओं के बीच कड़ियों को मजबूत करने की तत्काल जरूरत है, अध्यापकों और संस्थाओं के नेटवर्क विकसित करने और अध्यापक शिक्षकों के क्षमता निर्माण व कार्य मानकों को बढ़ावा देने की भी जरूरत है।
8. सृजनात्मकता और पहल की गुंजाइश के लिए हर स्तर पर तंत्रगत स्वायत्ता चाहिए; इसके साथ ही जवाबदेही की व्यवस्था भी जरूरी है। तंत्र को स्वयं पर और अपने कर्मचारियों, खासतौर से शिक्षकों पर भरोसा करना होगा और यह जोर देना होगा कि तंत्र अस्तित्व छात्रों की जरूरतें पूरी करने के लिए है।
9. शिक्षकों की सेवापूर्व तैयारी शैक्षिक रूप से समृद्ध और ज्यादा पेशेवर हो।

अध्यापक शिक्षा का ऐतिहासिक परिप्रेक्ष्य

हमारे देश में अध्यापक प्रशिक्षण कार्यक्रम वैदिक काल के गुरुकुलों में प्रारम्भ हुआ था जहाँ पिता अपने पुत्र को प्रशिक्षित करता था। बाद में कुछ परिवर्तनों के साथ गुरुकुलों की

व्यवस्था को ही बौद्ध एवं जैनों ने भी ग्रहण किया। अंग्रेजों के आगमन के साथ ही मैकाले ने स्कूली शिक्षा और अध्यापक शिक्षा में नया मोड़ लाने का निर्णय लिया। इस प्रकार अंग्रेजी सरकार ने भारत में एक विदेशी अध्यापक शिक्षा कार्यक्रम की शुरुआत की। अमरीकी शिक्षा शास्त्री किलपेट्रिक के अनुसार ''प्रशिक्षण तो सर्कस में काम करने वाले व्यक्तियों और पशु-पक्षियों को दिया जाता है शिक्षकों को तो शिक्षा दी जाती है।'' अंग्रेजी सरकार की कार्यसूची में शिक्षा प्रमुख मुद्दा नहीं था फिर भी उस समय अध्यापकों की तैयारी के लिए आर्थिक सहयोग दिया गया। नार्मल विद्यालय खोले गए। 1882 में गठित भारतीय शिक्षा आयोग ने अध्यापक शिक्षा के बारे में भी दिशा निर्देश जारी किए और 1904 की शिक्षा नीति तैयार करते हुए लॉर्ड कर्जन ने अध्यापक शिक्षा में सुधार के अनेक ठोस सुझाव दिए। 1929 में गठित हर्टाग कमेटी ने भी प्राथमिक विद्यालयों के शिक्षकों के प्रशिक्षण के लिए महत्वपूर्ण अनुसंशाएँ कीं। अंग्रेज शिक्षाविद सर जॉन सारजेण्ट की अध्यक्षता में 1944 में गठित सारजेण्ट कमेटी ने अध्यापकों की शिक्षा के लिए विस्तृत और व्यापक रिपोर्ट प्रस्तुत की।

स्वतंत्र भारत में अध्यापक शिक्षा व्यवस्था अंग्रेज कालीन अध्यापक शिक्षा में बिना पर्याप्त सुधार किए ही स्वीकार कर ली गई।1948 में गठित विश्वविद्यालय शिक्षा आयोग एवं 1952 में गठित माध्यमिक शिक्षा आयोग ने अध्यापक शिक्षा के संदर्भ में विशिष्ट सुझााव दिए। शिक्षा आयोग 1964 ने शिक्षकों की व्यावसायिक तैयारी को शिक्षा के गुणात्मक विकास के लिए महत्वपूर्ण मानते हुए अभ्यास शिक्षण एवं सेवारत प्रशिक्षण को अधिक महत्व दिया। 1968 में देश में पहली राष्ट्रीय शिक्षा नीति बनी और इसमें अध्यापक शिक्षा को व्यवस्थित और तर्क संगत बनाने का सुझााव दिया गया। एनसीईआरटी और क्षेत्रीय शिक्षा महाविद्यालयों के कार्यों की समीक्षा उपरांत शिक्षकों के लिए राष्ट्रीय आयोग (चट्टोपाध्याय आयोग) बना, जिसमें शिक्षकों के साथ-साथ अध्यापक शिक्षा की समस्याओं के बारे में गहराई से अध्ययन कर अध्यापक शिक्षा की विषयवस्तु, प्रशिक्षण की समयावधि में वृद्धि सहित प्रायोगिक कार्य की समृद्धि संबंधी अनुसंशाएँ कीं। 1986 में देश की संसद में पहली बार एक पूर्ण दिवस शिक्षा पर बहस उपरांत राष्ट्रीय शिक्षा नीति तैयार की, जिसमें अध्यापक शिक्षा की निरन्तरता हेतु स्थाई शैक्षिक संरचना सुझाई गई। उस समय प्रचलित अध्यापक शिक्षा संस्थानों को प्रोन्नत करते हुए डाइट, सी.टी.ई. तथा आई.ए.एस.ई. स्थापित किए गए। राष्ट्रीय शिक्षा नीति में सेवारत तथा सेवापूर्व अध्यापक शिक्षा को समृद्ध करने पर बल दिया गया।

निस्संदेह अध्यापक तथा अध्यापक शिक्षा की गुणवत्ता का सीधा प्रभाव शिक्षा की गुणवत्ता पर पड़ता है। अध्यापक शिक्षा व्यवस्था की संस्थागत प्रभावोत्पादकता में गुणात्मक परिवर्तन लाना चुनौतीपूर्ण है। पिछले अनेक वर्षों में अध्यापक शिक्षा परम्परागत व्यवस्था में सुधार लाने की कोशिशें अन्ततः असफल सिद्ध हुई हैं। इसलिए आवश्यक है कि अध्यापक शिक्षा की वर्तमान दशा तथा दिशा पर पुनर्विचार किया जाए।

राष्ट्रीय शिक्षा नीति 1986 की समीक्षा उपरांत नीति को क्रियान्वित किए जाने के लिए क्रियान्वयन कार्यक्रम 1992 तैयार किया गया, जिसमें अध्यापक शिक्षा के संबंध जिन बिन्दुओं पर विशेष रूप से ध्यान आकर्षित किया गया वे इस प्रकार हैं :

1. अध्यापक की व्यावसायिक प्रतिबद्धता तथा समग्र दक्षताओं के विकास की स्थिति असंतोषजनक है।
2. शैक्षणिक विज्ञान के अभिनव विकास के अनुरूप अध्यापक की सेवापूर्व शिक्षा की गुणवत्ता में सुधार तो नहीं हुआ है, हाँ, गिरावट के संकेत अवश्य दिखाई दिए हैं।
3. अध्यापक शिक्षा कार्यक्रम मुख्य रूप से सेवापूर्व शिक्षा तक ही सीमित रह गया है, इसमें व्यवहारिक रूप से सेवाकालीन प्रशिक्षण के लिए किसी भी व्यवस्थित कार्यक्रम के समावेश का अभाव है।
4. अध्यापक शिक्षा की अवमानक संस्थाओं में क्रमशः वृद्धि हुई है तथा व्यवस्था में व्याप्त घोर दुराचारों की अनेक शिकायतें मिली हैं।
5. राज्य शैक्षिक अनुसंधान और प्रशिक्षण परिषद तथा विश्वविद्यालय के शिक्षा विभागों की आधार व्यवस्था अपर्याप्त है तथा राज्य स्तर से नीचे इस प्रकार की व्यवस्था का पूर्ण अभाव है।

(गुणात्मक अध्यापक शिक्षा का पाठ्यचर्या प्रारूप, राष्ट्रीय अध्यापक शिक्षा परिषद 1999)

एनसीटीई का गठन एक संवैधानिक निकाय के रूप संसद द्वारा 1995 में किया गया, जिसके पहले अध्यक्ष देश के जाने माने शिक्षा शास्त्री प्रो. जे.एस. राजपूत बने। प्रो. राजपूत की अध्यक्षता में गठित प्रारूप निर्माण समिति ने अध्यापक शिक्षा में सुधार लाने के लिए ही गुणात्मक अध्यापक शिक्षा का पाठ्यचर्या प्रारूप तैयार किया। इस प्रारूप में अध्यापक शिक्षा के साथ-साथ अध्यापक शिक्षकों की शिक्षा के बारे में भी अनुसंशाएँ की गईं। इस दस्तावेज में कहा गया है कि अध्यापन एक कला है, जिसका विकास

अध्यापकों की शिक्षा तथा प्रशिक्षण में क्रमिक रूप से नियोजित गतिविधियों द्वारा किया जा सकता है। ऐसा ही कार्यक्रम अध्यापक शिक्षकों की व्यावसायिक तैयारी के लिए भी अपेक्षित है।

एनसीएफ 2005 के अध्याय 5 व्यवस्थागत सुधार में पाठ्यचर्या नवीकरण के लिए शिक्षक शिक्षा संबंधी बदलाव किए जाने हेतु अनेक अनुसंशाएँ की गई हैं। दस्तावेज में कहा गया है कि प्रचलित शिक्षक प्रशिक्षण कार्यक्रम में न तो नए विचारों को संदर्भ में लिया जाता है न ही स्कूल और समाज से जुड़े मुद्दों की उसमें चर्चा हो पाती है। शिक्षक प्रशिक्षणों में ज्ञान को ''प्रदत्त'' की तरह बिना सवाल उठाए पाठ्यचर्या में बाँध दिया जाता है। पाठ्यचर्या, पाठ्यक्रम और पाठ्यपुस्तकों का न तो शिक्षक विद्यार्थियों द्वारा परीक्षण किया जाता है और न ही वहाँ के अन्य शिक्षकों के द्वारा। अधिकतर प्रशिक्षण कार्यक्रम विद्यार्थियों को अपने अनुभवों को अभिव्यक्ति के अवसर नहीं देते। इसी दस्तावेज में प्रस्तावित किया गया है कि प्रशिक्षण की गुणवत्ता का एक बड़ा मानक है – शिक्षक के लिए उसकी प्रासंगिकता। अभी अधिकांश कार्यक्रमों में भाषण आधारित अभिगम अपनाया जाता है, जिसमें प्रशिक्षुओं को भागीदारी करने का मौका नहीं मिलता है। विडंबना ये है कि गतिविधि आधारित शिक्षा, बड़ी कक्षाओं का प्रबंधन, बहुस्तरीय और बहुश्रेणी शिक्षा और सामूहिक शिक्षण जैसे विषय, जिन्हें करके दिखाने की जरूरत है, उन्हें भी भाषणों द्वारा पढ़ाया जाता है। स्कूल अनुवर्तन की शुरुआत भी नहीं हो सकी है और संकुल स्तर की बैठकें ऐसे पेशेवर मंचों के रूप में विकसित नहीं हो सकी हैं, जहाँ शिक्षक साथ बैठें, चिंतन करें और एक साथ योजना बनाएँ। प्रशिक्षण में सुधार की रणनीति के तहत सुझाव दिया गया है कि सेवापूर्व प्रशिक्षण एवं सेवाकालीन प्रशिक्षण के दौरान शिक्षकों का पर्याप्त अभिमुखीकरण हो और ऐसी क्षमता का विकास हो कि वे पाठ्यचर्या रूपरेखा की चुनौतियों को समझें तथा उनका सामना कर सकें। सेवाकालीन प्रशिक्षण विशेष रूप से शिक्षकों के कक्षा अनुभव के संदर्भ में होने चाहिए। जिला शिक्षा एवं प्रशिक्षण संस्थानों, जिन्हें इन प्रशिक्षणों की जिम्मेदारी दी गई है, को कार्यक्रम इस तरह से आयोजित करने चाहिए कि शिक्षकों और स्कूलों को उससे लाभ हो।

अध्यापक शिक्षा का महत्व

अध्यापक शिक्षा की राष्ट्रीय पाठ्यचर्या की रूपरेखा 2009 में कहा गया है कि ''हमें ऐसे शिक्षकों की जरूरत है जो बच्चों की परवाह करें और उन्हे प्यार दें। बच्चों को सामाजिक, सांस्कृतिक, आर्थिक और राजनैतिक संदर्भ में समझे, उनकी समस्याओं और

आवश्यकताओं के प्रति संवेदनशीलता विकसित करें। सभी बच्चों से समान व्यवहार करें। बच्चों को मात्र ज्ञान प्राप्त करने वाला नही समझे बल्कि स्वाभाविक रूप से बच्चों को सिखाएं और शिक्षक अधिगम प्रक्रिया को आनंददायी सहभागितापूर्ण और अर्थपूर्ण बनाए। ज्ञान को कोई प्रदान करने वाली वस्तु न समझे बल्कि बच्चों की सामाजिक व व्यक्तिगत् वास्तविकाओं को अकादमिक अधिगम के साथ अंतर्निहित करें। पाठ्यपुस्तकों और पाठ्यचर्या का समालोचनात्मक मूल्यांकन करे तथा स्थानीय ज्ञान को पाठ्यचर्या से जोड़े।''

प्रसिद्ध शिक्षाविद् मर्मर मुखोपाध्याय के अनुसार शिक्षक का व्यवहार विद्यार्थी की संतुष्टि के लिए महत्वपूर्ण मानदण्ड होता है, और यही अधिकांशत: पहचान के बिना रह जाता है। असंतुष्ट शिक्षक कभी भी अच्छा नहीं पढ़ा सकता और न ही वह विद्यार्थियों को चरित्रवान बना सकता है। क्योंकि यह उत्तरदायित्व निभाने का मामला है। यदि हम विद्यार्थियों के समग्र विकास के लिए कार्य करना चाहते हैं, तो हमें शिक्षक के महत्व पर भी बल देना चाहिए। शिक्षक को हमेशा जागरूक, सुसंस्कृत, स्वतन्त्र और यथार्थवादी होना चाहिए तभी वह शिक्षित विद्यार्थी बनाने का वास्तविक प्रयास कर सकता है। जैसे- जिस शिक्षक ने अपना शारीरिक विकास न किया हो, वह भला विद्यार्थी को शारीरिक विकास करने में मदद कैसे कर सकता है? जिस शिक्षक का स्वयं का मानसिक विकास अवरुद्ध हो गया हो, वह विद्यार्थी का मानसिक विकास करने में सफल नहीं हो सकता। जो शिक्षक भवनात्मक रूप से स्वयं कमजोर है, वह विद्यार्थियों को भावनात्मक रूप से परिपक्व नहीं बना सकता। जो शिक्षक स्वयं बौद्धिक रूप से सक्रिय नहीं है, वह अपने विद्यार्थियों के बौद्धिक विकास में सहयोगी नहीं हो सकते। जो स्वयं नैतिक रूप से परिपक्व नहीं हो रहा है, वह अपने विद्यार्थियों में उच्च नैतिक मापदण्डों को स्थापित नहीं कर सकता। अत: अध्यापक शिक्षा के जरिए शिक्षकों के सतत विकास के लिए ऐसा प्रतिमान तय किया जाना चाहिए जिसमें उनके समग्र विकास का वातावरण बने।

यह जानी मानी बात है कि शिक्षक का काम बच्चों का दिमाग गढ़ना है, इसलिए शिक्षातन्त्र को अपने शिक्षकों पर भरोसा करना चाहिए और शैक्षिक नेतृत्व को सुदृढ़ बनाना चाहिए। शैक्षिक तन्त्र की गुणवत्ता की सीमा उसके शिक्षकों से तय होती है। अभी देशभर में शिक्षक अपनी कक्षाओं में तो कुछ हद तक स्वतंत्रता एवं शक्ति का अहसास करते हैं, मगर उनकी सामाजिक प्रतिष्ठा अभी भी बहुत कम है। शिक्षक अपनी कक्षा में क्या बेहतर करेंगे या अलग तरीके से करेंगे? इसकी उन्हें आजादी नहीं है। अध्यापक

शिक्षा के माध्यम से शिक्षकों को इस बात के लिए तैयार किया जाना चाहिए कि वे अपना रास्ता स्वयं खोज सकें और स्कूलों को वास्तव में विद्यार्थियों के सीखने की संस्था बना सकें।

अध्यापक शिक्षा के उद्देश्य

हमारे देश में अध्यापक शिक्षा के कार्यक्रम अनेक स्तरों पर प्रचलित हैं। देश भर में शासकीय एवं निजी अध्यापक शिक्षण संस्थानों द्वारा अध्यापक प्रशिक्षण कार्यक्रम संचालित किए जा रहे हैं। अनुभूत तथ्य यह है कि इन प्रशिक्षण संस्थानों में अध्यापकों की प्रशिक्षुता, अभ्यास शिक्षण, प्रायोगिक कार्य तथा पूरक शैक्षिक क्रियाओं पर उचित ध्यान नहीं दिया जाता। ऐसा प्रतीत होता है कि अध्यापक प्रशिक्षण संस्थानों को अध्यापक शिक्षा के उद्देश्यों की या तो जानकारी नहीं है या फिर वे जानबूझकर इनकी उपेक्षा करते हैं। अध्यापक शिक्षा के उद्देश्यों के अंतर्गत शिक्षकों की शिक्षण के प्रति अंतर्दृष्टि एवं दूरदृष्टि विकसित करने के साथ-साथ निम्नांकित उद्देश्य रखे जा सकते हैं:

1. शिक्षकों को व्यक्ति, समाज और राष्ट्र की आवश्यकताओं एवं आकांक्षाओं का ज्ञान कराना और उन सबकी प्राप्ति के लिए तैयार करना।
2. शिक्षकों को विभिन्न आयुवर्ग के छात्रों के मनोविज्ञान का ज्ञान कराना और उनके साथ तदनुकूल व्यवहार विधियों में प्रशिक्षित करना।
3. शिक्षकों को विद्यालयों में आयोजित होने वाली पाठ्य सहगामी क्रियाओं के संचालन हेतु सक्षम बनाना।
4. शिक्षकों को कक्षा प्रबन्धन कला और विद्यालय संगठन की संचालन क्रियाओं में दक्ष कराना।
5. शिक्षकों में शैक्षिक समस्याओं को समझने और उन्हें हल करने की अन्तर्दृष्टि और दूरदृष्टि विकसित करना।

नए संदर्भ में अध्यापक शिक्षा के लक्ष्य और उद्देश्य इस प्रकार निर्धारित किए गए हैं:

1. भारतीय संविधान द्वारा स्थापित वचनबद्धता को प्राप्त करने के लिए शिक्षकों को सशक्त बनाना।
2. शिक्षकों को राष्ट्र निर्माण के कार्यक्रमों में क्रियाशीलता से भाग लेने, आर्थिक

विकास को गति देने, आधुनिकीकरण तथा सामाजिक परिवर्तनों एवं राष्ट्रीय समस्याओं को सुलझाने योग्य बनाना।

3. शिक्षकों को भारतीय समाज की आवश्यकताओं को पूरा करने के लिए समाज की वास्तविकताओं तथा इसकी समाहारक सांस्कृतिक विरासत से जोड़ना।
4. शिक्षकों को अध्यापक शिक्षा की राष्ट्रीय पाठ्यचर्या रूपरेखा 2009 में प्रस्तुत शैक्षिक विषमताओं को समझने और उन्हें दूर करने हेतु संश्लेषण करने में सक्षम बनाना।
5. शिक्षकों को शिक्षा के सिद्धान्त और व्यवहार के मध्य समन्वयन करने में सक्षम बनाना।
6. शिक्षकों को देश में व्याप्त सामाजिक बुराईयों के विरुद्ध वातावरण बनाने तथा स्वयं ईमानदार होने के लिए प्रोत्साहित करना।

विगत कुछ वर्षों के दौरान देश में व्यापक सामाजिक परिवर्तन हुए हैं। समाज स्वत: बदल रहा है। सामाजिक बदलाव की इस प्रक्रिया में सभी वर्गों के जीवन की गुणवत्ता में वृद्धि के बावजूद सापेक्ष रूप से जीवन मूल्यों में गिरावट आ रही है। अपनी सांसारिक इच्छाओं की पूर्ति के लिए लोगों में सामाजिक रूप से वर्जित या अनुचित साधनों का प्रयोग, धन प्राप्त करने और रातों रात सम्पन्न होने की आधुनिक जीवन शैली का विस्तार होता जा रहा है। अमानवीय व्यवहार, अपचार, अपराध, मानसिक बीमारी, भ्रष्टाचार आदि दुर्गुणों के बढ़ने से शिक्षित समाज का अपराधीकरण हो रहा है। इस परिस्थिति में ''शिक्षा से शालीन व्यवहार'' के विकास की सम्भावनाएँ एवं अपेक्षाएँ बढ़ना स्वाभाविक है। इसी परिप्रेक्ष्य में अब अध्यापक शिक्षा को सभ्य समाज के विकास हेतु सामाजिक संदर्भ में शीघ्र ही उचित कदम उठाना चाहिए।

अध्यापक शिक्षा संस्थानों की मौजूदा हालत

शिक्षकों की गुणवत्ता और उनके कार्य करने के तरीकों में बदलाव की वास्तविक जिम्मेदारी शिक्षण-प्रशिक्षण संस्थानों पर हैं। देश भर के प्रशिक्षण संस्थान (सरकारी एवं निजी) अभी अपनी इस जिम्मेदारी का ठीक तरह से निर्वाह कर पाने में असफल ही हुए हैं। एनसीईआरटी, न्यूपा और एनसीटीई जैसी राष्ट्रीय संस्थाएं न जाने अभी तक क्या कर रही हैं? जबकि यह सभी मानव संसाधन मंत्रालय की एडवाइजरी संस्थाएँ हैं। अनेक निजी, गैर सरकारी संस्थाएँ और अन्तरराष्ट्रीय दानदाता संस्थाएँ यूनीसेफ, यूनेस्को आदि

की प्राथमिकता अभी भी शिक्षक-प्रशिक्षण संस्थानों की कार्यपद्धति में स्थान नहीं बना पाई हैं। बगैर प्रभावी शिक्षक-प्रशिक्षण के शिक्षकों का कार्य व्यवहार कैसे सुधरेगा? हमारे देश में शिक्षक-प्रशिक्षण का एक भी विश्वविद्यालय न होना शिक्षक-प्रशिक्षण के प्रति हमारे कमजोर दृष्टिकोण को प्रस्तुत करता है। सभी क्षेत्रीय शिक्षा संस्थान, शिक्षा महाविद्यालय और जिला शिक्षा और प्रशिक्षण संस्थान (डाइट), राज्यों में संचालित संस्थान, विश्वविद्यालयों (सामान्य) और माध्यमिक शिक्षा मंडलों से जुड़े हैं। आखिर ऐसी क्या मजबूरी है कि अन्य सभी क्षेत्रों (तकनीकी, कृषि, चिकित्सा) के अलग-अलग विश्वविद्यालय हैं, लेकिन देश भर में शिक्षक-शिक्षा का एक भी विश्वविद्यालय नहीं खोला जा सका? यह एक ऐसी महत्वपूर्ण रिक्तता है जिसकी पूर्ति किये बगैर, शिक्षक-प्रशिक्षक को बेहतर बनाना संभव नहीं हो सकता। अच्छे प्रशिक्षण का प्रभाव शिक्षकों की कार्यदक्षता पर अवश्य आएगा तथा अच्छे शिक्षकों (भयमुक्त) की प्राथमिकता भी अच्छे विद्यालय स्थापित करना होगी। अंततः विद्यालयों की कार्यप्रणाली में सकारात्मक बदलाव संभव होगा, जिससे उनकी गुणवत्ता बढ़ेगी, छवि सुधरेगी और विश्वसनीयता का प्रसार होगा।

अध्यापक शिक्षा-संस्थान की मौजूदा कार्यपद्धति

देश भर में शिक्षक-प्रशिक्षण का कार्य मूलतः डाइट्स और शिक्षा महाविद्यालयों में चल रहा है। यह संस्थाएँ सरकारी और गैरसरकारी स्वरूप की हैं लेकिन उनमें प्रशिक्षण की प्रक्रियाएँ लगभग एक जैसी हैं। पिछले कुछ वर्षों से विभिन्न संस्थाओं द्वारा पत्राचार या दूरस्थ शिक्षा माध्यम से भी शिक्षक-प्रशिक्षण कराया जा रहा है। सभी संस्थाओं में सेवा पूर्व और सेवारत शिक्षकों के लिये एक समान पाठ्यचर्या लागू है। शिक्षण प्रशिक्षण हेतु लागू पाठ्यक्रम अनुसार नवीन पाठ्य वस्तु और पाठ्यपुस्तकें उपलब्ध ही नही हैं। एक विषय की अनेक पुस्तकें पढ़ने की परंपरा विगत लंबे समय से जारी है। डी.एल.एड., बी.एड., और एम.एड. प्रशिक्षण की कोई एकीकृत और उपयोगी पाठ्यसामग्री उपलब्ध नहीं हैं।

शिक्षा का अधिकार कानून लागू हो जाने से अब संवैधानिक रूप से प्रत्येक बच्चे को शिक्षा का मौलिक अधिकार मिल गया है। बच्चों को शिक्षा का यह अधिकार स्कूलों में कार्यरत शिक्षक ही दे सकते हैं। इसीलिए स्कूल और शिक्षकों को महत्वपूर्ण मानकर तदनुरूप व्यवस्थाएँ किए जाने का प्रयास भी किया जा रहा है। राष्ट्रीय स्तर पर अध्यापक शिक्षा का मिशन बनाना केन्द्रीय सरकार की उल्लेखनीय पहल कही जा सकती है।

अध्यापक-शिक्षा के लिए कार्यरत संस्थानों की क्रियाशीलता में वृद्धि लिए प्रतिवर्ष पर्याप्त बजट की भी व्यवस्था की गई है। लेकिन अभी भी अध्यापक-शिक्षा संस्थानों के बारे में लिए जा रहे निर्णय प्रशासन और प्रबंधनोन्मुखी होने से शिक्षकों की दशा और दिशा में अध्यापक शिक्षण संस्थानों के माध्यम से कोई सार्थक बदलाव नहीं हुआ है। जबकि स्कूलों और शिक्षकों की गुणवत्ता और उनके कार्य करने के तरीकों में बदलाव लाने की वास्तविक जिम्मेदारी अध्यापक शिक्षण संस्थानों पर ही है और देश भर के अध्यापक शिक्षण संस्थान (सरकारी एवं निजी) अभी अपनी इस जिम्मेदारी को ठीक तरह से निभाने में सफल नहीं हैं। हमारे देश में अध्यापक शिक्षा का विश्वविद्यालय न होना एक बड़ी रिक्तता है। क्या देश में अन्य विश्वविद्यालयों की भाँति अध्यापक शिक्षा का विश्वविद्यालय नहीं बनाया जा सकता?

अभी भी अध्यापन अभ्यास का कार्य अव्यवहारिक, रूढ़िग्रस्त और परंपरागत बना हुआ है। शिक्षण कला सिखाने की व्यवहारिक रणनीतियों का पूर्णतः अभाव है। सभी अध्यापक शिक्षा पाठ्यक्रमों की परीक्षायें विविध विश्वविद्यालयालयों द्वारा एवं राज्यों के माध्यमिक परीक्षा मंडल ले रहे हैं जिनका शिक्षक शिक्षा के पाठ्यक्रम और पाठ्यवस्तु निर्माण से कोई सीधा सरोकार नहीं है। सेवा पूर्व प्रशिक्षण अधिकांशतया दूरस्थ शिक्षा या पत्राचार माध्यम से भी कराया जा रहा है। नियमित प्रशिक्षण पाठ्यक्रम भी अधिक प्रभावकारी नहीं हैं।

सभी प्रशिक्षण संस्थाओं में प्रशिक्षण की अपेक्षा परंपरागत शिक्षण ही चल रहा है। प्रशिक्षण संस्थाओं के लिए प्रशिक्षकों की उपयुक्त भर्ती एवं पदोन्नति की नीति और नियम न होने से अनेक संस्थाओं में कई श्रेणी के अकादमिक पद एवं संस्था प्रधान (प्राचार्य) के पद रिक्त हैं या इन पदों पर पदविरुद्ध ढंग से उदासीन वृत्ति के लोग पदस्थ हैं। एनसीईआरटी के निर्देशों के बाबजूद डाइट्स, शिक्षा महाविद्यालय और राज्य शैक्षिक अनुसंधान और प्रशिक्षण परिक्षद में विषयवार प्रकोष्ठ (विभाग) गठित ही नहीं किये गये हैं। कार्यरत शिक्षकों की विषयवार प्रशिक्षण की आवश्यकताओं का आकलन किये बगैर निरंतर सेवा कालीन प्रशिक्षण आयोजित किये जा रहे हैं जिनका शिक्षकों के कार्यव्यवहार और मनोवृत्ति पर कोई सकारात्मक प्रभाव नहीं पड़ता है।

उच्च अध्ययन शिक्षा संस्थानों सहित डाइटस में अधिकांशतया व्याख्याता या इससे उच्च पदों/संवर्ग के ही लोग कार्यरत हैं। प्रारंभिक कक्षाओं में शिक्षण कार्य के अनुभवी और उत्साही लोगों को कार्य करने के प्रभावी अवसर संभव ही नहीं हो पा

रहे हैं। शिक्षक प्रशिक्षक बनने – बनाने का कोई प्रभावी पाठ्यक्रम भी अभी संचालित नहीं है। प्रशिक्षण संवर्ग के लिये भी बी.एड. और एम.एड. प्रशिक्षणों को ही पर्याप्त और अंतिम मान्य किया जा रहा है। सेवापूर्व शिक्षक प्रशिक्षण और सेवाकालीन प्रशिक्षण प्रभावहीन हैं जबकि करोडों–अरबों रुपये की राशि निरंतर प्रतिवर्ष प्रशिक्षण संबंधी कार्यों में व्यय की जा रही है।

वर्तमान में शिक्षक प्रशिक्षण के पाठ्यक्रम परस्पर एक दूसरे को समर्थन नहीं देते और न ही इनकी पाठ्यवस्तु में कोई सामंजस्य है। डी.एड. प्रशिक्षण के बाद बी.एड. और बी.एड प्रशिक्षण के बाद एम.एड. प्रशिक्षण करना तब तक संभव नही है जब तक कि छात्र स्नातक और स्नातकोत्तर कक्षाएँ उत्तीर्ण न कर ले। इस प्रकार शिक्षक–प्रशिक्षण में छात्रों का समय और संसाधन तो व्यर्थ होते ही हैं प्रशिक्षण की प्रभाविता भी कमजोर हो रही हैं।

अध्यापक-शिक्षा के अनुभव

शिक्षक प्रशिक्षण संस्थाओं के सभी पायदानों डाईट, शिक्षा महाविद्यालय, एस.सी.ई.आर.टी एवं एन.सी.ई.आर.टी. सहित अनेक गैर–सरकारी संगठनों में कार्य करने के अपने प्रत्यक्ष अनुभवों के आधार पर यह कहा जा सकता है कि **देश में शिक्षक प्रशिक्षण की स्थिति बेहद लापरवाहीपूर्ण हैं। सर्वत्र प्रशिक्षकों का मनोबल गिरा हुआ है इसलिए वे भी शिक्षकों का मनोबल तोड़ रहे हैं।** सर्वत्र असंतोष व्याप्त है। केंद्र प्रवर्तित योजना अनुसार शिक्षक प्रशिक्षण संस्थानों के लिए जारी सारी बजट राशि व्यय हो जाने के बाद भी परिणाम अपेक्षित नहीं है। इस शून्यता के कारण ही हमारे अभियान ''फ्लाप–शो'' साबित हो रहे हैं। अत: सभी को मिलजुलकर शिक्षक प्रशिक्षण को संभालना ही चाहिए।

अध्यापक शिक्षा की वर्तमान चुनौतियाँ

राष्ट्रीय पाठयचर्या की रूपरेखा (एन.सी.एफ)–2005 के अनुसार शिक्षा की गुणवत्ता बनाए रखने के लिये चार निर्देशक सिद्धांत तय किये गये हैं :

- ज्ञान को सांस्थानिक परिसर से बाहर फैले जीवन से जोड़ा जाए।
- सीखने को सिर्फ पाठ्यपुस्तकों तक सीमित रखने की प्रवृत्ति को तोड़ा जाए।
- पाठ्यपुस्तकों को नीरसता, उबाऊपन और यांत्रिकता से उबार कर अधिक रोचक व समृद्ध बनाया जाए।
- परीक्षा प्रणाली को लचीला बनाया जाए।

राष्ट्रीय पाठ्यचर्या की इसी रूपरेखा में यह भी स्वीकार किया गया है कि वर्तमान शिक्षा प्रणाली सामाजिक सोच में परिवर्तन कर पाने में असफल और असमर्थ है। शिक्षा का आधुनिकीकरण यानि एक ऐसी समग्र चेतना के लिये कार्य करना जो प्रगतिशील जीवन के सामंजस्य के लिये हमें तैयार कर सकें। अत: भविष्योन्मुखी शिक्षा का सृजन नये समाज के लिये आवश्यक है।

राष्ट्रीय पाठ्यचर्या की रूपरेखा यह भी मानती है कि आम नागरिक अपने बच्चों के लिए ऐसी शिक्षा चाहते हैं जिससे उनके बच्चे जीवन में सफल हो जाएं। यह सफलता एक अर्थोत्पादक कौशल, उचित अनुचित का विवेक विकसित करने से संभव है। इसी दस्तावेज ने शिक्षा के विस्तार और घटते लिंगानुपात के बीच रिश्ते की तलाश में यह भी स्वीकार किया है कि शिक्षा ने महिलाओं को इस हद तक कमजोर बना दिया है कि आज वे जन्म लेने के अधिकार का भी उपयोग नहीं कर पा रही हैं। अंतत: यह माना गया कि शिक्षा का निर्धारण करने वाली शासकीय प्रक्रियाओं को सरल बनाया जाना चाहिए।

आज भी देश भर की शिक्षा व्यवस्था एन.सी.एफ.–2005 के इर्दगिर्द घूमती नजर आती है। देश के प्रसिद्ध शिक्षाविद् प्रो. यशपाल जी और प्रो. कृष्ण कुमार जी (पूर्व निदेशक एन.सी.ई.आर.टी.) की टीम ने मिलकर जिस एन.सी.एफ.–2005 का सृजन किया था आज उन्हें स्वयं अनेक प्रश्नों के उत्तर खोजने होंगे। प्रो. कृष्णकुमार जी ने आज से लगभग 30 वर्ष पूर्व अपनी पुस्तक राज, समाज और शिक्षा में समूचे शैक्षिक तंत्र पर अनेक प्रकार के प्रश्न पैदा कर, समाज से हस्तक्षेप की मांग की थी।

प्रो. कृष्ण कुमार अपनी इस पुस्तक में लिखते हैं:

- सरकारी दृष्टि से तो हम आजाद हैं पर हमारी सभी महत्वपूर्ण व्यवस्थायें यथा प्रशासन, कानून और शिक्षा औपनिवेशिक काल की देन हैं।
- नीति, कार्यक्रम और संचालन इन तीनों दृष्टिकोण से शिक्षा पर शासक वर्ग का नियंत्रण है।
- स्कूल हमारे समाज के शासक वर्ग के प्रमुख घटक नौकरशाही के नियंत्रण में हैं।
- गाँव के स्कूल की दशा इतनी जीर्ण–शीर्ण रहती है कि वहां रुकने के लिये असाधारण मनोबल चाहिए। वहां रहकर कुछ सीखना और सीखने का आनंद लेना तो दूर की बात है। वहां न खेल की सामग्री है न पुस्तकालय।
- जनतंत्र अभी तक देश को सामंती संस्कारों से मुक्त नहीं कर पाया है।

एन.सी.एफ. में शिक्षा की पुनर्रचना के लिये बनी सहमति के बाद, बदलाव के बिन्दु निर्धारित करते हुए कहा गया था कि–

- अब स्कूल और समाज के बीच की दूरियों को खत्म कर, शिक्षण को सामाजिक परिवेश से संबद्ध करना जरूरी है।
- जिस तरह टेलीविजन और इन्टरनेट से ज्ञान को अधिकाधिक रोचक और सुगम बनाकर पेश किया जाता है उसी तरह पाठ्यपुस्तकों की विषयवस्तु को भी अधिकाधिक सहज और ग्राह्य बनाना होगा।
- परीक्षा प्रणाली की जकड़बंदी को भी काफी ढीला बनाना होगा।

शिक्षा में इन बदलावों के प्रमुख कारक अंततः शिक्षक हैं, जिन्हें सशक्त बनाने के लिए निरंतर शिक्षण प्रशिक्षण का कार्य जारी है। शिक्षण प्रशिक्षण की प्रभाविता पर अब और अधिक ध्यान दिये जाने की जरूरत आ पड़ी है ताकि यह शैक्षिक बदलाव का प्रतीक बन सके।

एन.सी.एफ.–2005 के अनुसार शिक्षकों की पेशेवर तैयारी आवश्यक है। सेवा पूर्व और सेवारत शिक्षक प्रशिक्षण के दौरान अध्यापन अभ्यास का कार्य अत्यन्त औपचारिक, रूढ़िग्रस्त, परम्परागत और अव्यवहारिक बना हुआ है।

अध्यापक शिक्षा में सुधार हेतु प्रस्तावित रणनीति

अध्यापक शिक्षा के क्षेत्र में कार्यरत संस्थाओं और लोगों को यह भलीभांति समझना चाहिए कि अध्यापक शिक्षा, सामान्य शिक्षा से महत्वपूर्ण है। अध्यापक शिक्षा को सार्थक परिणामकारी बनाने के लिए उपयोगी पाठ्यक्रम बनाने के साथ-साथ योग्य प्रशिक्षकों का चयन और निर्दोष मूल्यांकन प्रक्रिया तय की जानी चाहिए। यदि अध्यापक शिक्षा की समस्याओं का कारगर समाधान करना है तो अध्यापक शिक्षा संस्थाओं के प्रमुख का पद अकादमिक रूप से समर्थ शिक्षाविदों को ही सौंपना चाहिए। हमें ऐसे एकीकृत पाठ्यक्रमों की संरचना भी करनी चाहिए जिनके माध्यम से शिक्षण और प्रशिक्षण के पाठ्यक्रम नियमित और श्रेणीबद्ध ढ़ग से संचालित हों ताकि किसी भी छात्र को नियमित पढ़ाई (बी.ए.,बी.एस.सी.) की डिग्री पृथक से लेने का मोहताज न रहना पड़े। यद्यपि एन.सी.ई.आर.टी द्वारा एकीकृत 4 वर्षीय बी.एड. पाठ्यक्रम विगत् कई वर्षों से संचालित है लेकिन इसे राज्य सरकारों द्वारा अपनाया नहीं जा रहा, जो विचारणीय है। शिक्षा का अधिकार कानून 2009 के अनुरूप प्रभावी शिक्षक प्रशिक्षण ही, शिक्षकों के

दृष्टिकोण में वास्तविक बदलाव ला सकता है। बेहतर और प्रभावी प्रशिक्षण शिक्षकों को नया प्रयोग करने, शिक्षा में क्रान्तिकारी बदलाव लाने और शिक्षा के सामाजिक संदर्भो के प्रति संवेदनशील और जबाबदेह बनाने की दिशा में सकारात्मक सहयोग कर सकता है।

अध्यापक शिक्षा में सुधार हेतु सुझाव

शिक्षकों की भूमिका को प्रभावी बनाने के लिए अध्यापक शिक्षा संस्थाओं की कार्यपद्धति में निम्नानुसार सुधार किया जाना अपेक्षित हैं:

1. सर्वप्रथम देश की सर्वोच्च संस्थाओं- एनसीईआरटी, न्यूपा और एनसीटीई से समन्वय स्थापित कर शिक्षक प्रशिक्षण हेतु एक ऐसे एकीकृत प्रशिक्षक-प्रशिक्षण पाठयक्रम की संरचना की जाए जो एक निश्चित समयावधि में प्रभावी शिक्षक प्रशिक्षक तैयार कर सकें। बगैर प्रशिक्षक बने कोई भला प्रशिक्षण देने के कार्य में दक्ष कैसे हो सकता है?
2. राष्ट्रीय स्तर पर केन्द्रीय शिक्षक शिक्षा विश्वविद्यालय स्थापित करते हुए सभी राज्यों में कम से कम एक अध्यापक शिक्षा विश्वविद्यालय स्थापित हो, जिससे सभी डाइट और शिक्षा महाविद्यालय संबद्ध किये जाएं।
3. राष्ट्रीय और राज्य स्तर पर शिक्षक-प्रशिक्षण की एक सुनियोजित कार्य नीति तैयार की जाए।
4. सभी शिक्षक प्रशिक्षण संस्थाओं में एक पद प्रबंधक मानव संसाधन का स्वीकृत हो ताकि प्रत्येक प्रशिक्षक की वास्तविक क्षमताओं का आकलन कर उसे तदनुसार भूमिका सौपी जा सके।
5. शिक्षक-प्रशिक्षक बनाने हेतु ठोस और एकीकृत पाठ्यवस्तु विकसित कराई जाये और तदनुसार प्रशिक्षक प्रशिक्षण आयोजित कराये जाएं।
6. दूरस्थ शिक्षा सहित पत्राचार माध्यम से प्रशिक्षण के पाठयक्रमों को कठोरतापूर्वक प्रतिबंधित किया जाए।
7. सेवारत शिक्षकों के प्रशिक्षण के लिये कम अवधि के उपयुक्त कोर्स बनाये जा सकते हैं।
8. सेवाकालीन शिक्षक-प्रशिक्षण को प्रभावी बनाने हेतु उपयुक्त रणनीति तैयार कर विकेन्द्रीकृत तरीके से प्रशिक्षण आयोजित कराये जाएं।
9. प्रशिक्षण उपरांत प्रशिक्षण का फॉलोअप और मॉनीटरिंग किए जाने की प्रक्रिया

तय कराई जाये ताकि शिक्षक सीखे गये ज्ञान और कौशल का भलीभांति उपयोग कर सकें।

10. शिक्षक शिक्षा के प्रति दृष्टिकोण में बदलाव कर राष्ट्रीय एवं राज्य स्तर पर शिक्षक-प्रतिक्षकों के पृथक कैडर को शिक्षक संवर्ग से अलग प्रशिक्षण संवर्ग के रूप में मान्य कर उन्हें उच्च वेतनमान और अन्य जरूरी सुविधायें दिये जाने का प्रावधान तय करने से प्रशिक्षण की गुणवत्ता में वृद्धि संभव होगी।
11. जिस तरह तकनीकी शिक्षा के लिए देशभर में अनेक आई.आई.टी. और प्रबंधन की शिक्षा के लिए आई.आई.एम. संचालित है उसी प्रकार शिक्षक-शिक्षा के लिए राष्ट्रीय स्तर पर केन्द्रीय शिक्षक शिक्षा विश्वविद्यालय स्थापित किये जाने के साथ सभी प्रदेशों में राष्ट्रीय शिक्षक शिक्षा संस्थान विकसित किये जाने चाहिये ताकि इनमें प्रवेश लेने वाले छात्र बेहतर शिक्षक के रूप में तैयार हो सकें। इन संस्थानों में शिक्षक-प्रशिक्षकों के लिए भी उपयुक्त पाठ्यक्रम संचालित किये जा सकते हैं।
12. सभी स्तरों पर सहभागिता आधारित शिक्षक प्रशिक्षण कार्यक्रम लागू किया जाना चाहिए।

संदर्भ

राष्ट्रीय पाठ्यचर्या की रूपरेखा, राष्ट्रीय शैक्षिक अनुसंधान और प्रशिक्षण परिषद 2006, श्री अरविन्द मार्ग, नई दिल्ली।

गुणात्मक अध्यापक शिक्षा का पाठ्यचर्या प्रारूप, राष्ट्रीय अध्यापक शिक्षा परिषद 1999, नई दिल्ली।

शिक्षक विकास एवं प्रबन्धन पर आयोजित सम्मेलन दिनांक 23 से 25 फरवरी 2009 के दौरान नीति व काम-काज संबंधी चर्चाएँ एवं सुझाव, मानव संशाधन विकास मंत्रालय 2009, नई दिल्ली।

राज समाज और शिक्षा, प्रो. कृष्ण कुमार (1986), राज कमल प्रकाशन नई दिल्ली।

प्रोफेशनल स्टेट ऑफ टीचर्स, एनसीटीई 1996, नई दिल्ली

शिक्षा के सरोकार -1. स्कूली शिक्षा के बदलते परिदश्श्य में अध्यापन कर्म की रूपरेखा विषय पर केन्द्रित वार्षिक संगोष्ठी 23 से 25 मई 2017, अजीम प्रेमजी विश्वविद्यालय बेंगलुरू एवं अम्बेडकर विश्वविद्यालय नई दिल्ली

शिक्षक शिक्षा की राष्ट्रीय पाठ्यचर्या की रूपरेखा एनसीएफटीई 2009

परिप्रेक्ष्य
वर्ष 23, अंक 3, दिसंबर 2016

शोध टिप्पणी/संवाद

हरियाणा के मेवात जिले में प्राथमिक स्तर पर अनामांकन और मुस्लिम बच्चों के विद्यालय छोड़ने के कारण

वेटुकुरी पी.एस. राजू*

सारांश

भारत साठ से भी अधिक वर्षों से स्वतंत्र है। इसके बाद भी संविधान में परिकल्पना किए गए मूलभूत अधिकार पूरी तरह से प्रमुख अल्पसंख्यक समुदाय विशेषकर मुसलमानों तक नहीं पहुंच पाए हैं। नतीजतन, बड़ी संख्या में मुसलमान अब भी गरीबी में ही रह रहे हैं, वे अपने बच्चों को साक्षर बनाने के लिए भारी संघर्षों और शैक्षणिक असुविधाओं का सामना करते रहे हैं। यह आलेख एक गहन अध्ययन के आधार पर तैयार किया गया है। हाल ही में हरियाणा के मेवात जिले में घसेरा गांव में यह अध्ययन किया गया, बाधाओं और समस्याओं, अनकही और गूढ़ कठिनाइयों और विशेषाधिकार शैक्षिक असमानताओं के बावजूद यह अध्ययन उन समस्याओं को दर्शाता है। मुस्लिम परिवारों के बीच बच्चों को स्कूल भेजने के लिए असमर्थता – माता-पिता की अल्प दैनिक मजदूरी, स्कूल की अनुपलब्धता, घर और स्कूल दोनों के अपर्याप्त आधारभूत ढांचे, शिक्षक अनुपस्थिति, सरकार की मंजूरी में अपर्याप्त देरी, छात्राओं की सुरक्षा, सामाजिक बहिष्कार इत्यादि तथा मुस्लिम समुदाय में अभाव, अज्ञानता और लापरवाही, दशकों से भारी चुनौतियों का सामना करने के साथ-साथ शिक्षा प्रक्रिया को कमजोर बना रहे हैं और इस प्रणाली को जटिल बनाते हैं। हमें इनके विकास और सुधार के लिए नई रणनीति बनानी होगा।

*सहायक प्रोफेसर, न्यूपा संकाय, न्यूपा, नई दिल्ली

प्रस्तावना

शायद, भारतीय गांवों पर सबसे अधिक महत्वपूर्ण बात महात्मा गांधी से सुनी जा सकती है कि ''भारत गांवों में रहता है।'' गरीबी को कम करने, बेरोजगारी, स्वास्थ्य और पोषण में सुधार के लिए शिक्षा एक शक्तिशाली उपकरण के रूप में कार्य कर सकती है। मानकों, और एक स्थायी मानव विकास मानक को प्राप्त करने हेतु (विश्व बैंक, 2004), समाज और व्यक्ति के विकास के लिए, प्राथमिक शिक्षा को एक बुनियादी मानव अधि ाकार के रूप में मान्यता प्राप्त है। (यूनेस्को, 2008), और यह शिक्षित और अशिक्षित के बीच एक पुल के रूप में कार्य कर सकती है।

भारत सरकार की मान्यता है कि अनेक कारकों के संयोजन के परिणामस्वरूप शिक्षा प्रणाली से हाशिए के बच्चे बंचित रहते हैं। शिक्षा का अधिकार अधिनियम परिभाषित करता है कि शिक्षा का अधिकार ''न केवल समान अवसर है, बल्कि उन शर्तों का भी निर्माण करता है जिसमें अनुसूचित जाति समाज के बच्चों, सहित वंचित वर्गों, अनुसूचित जनजातियों, मुस्लिम अल्पसंख्यकों, भूमिहीन कृषि श्रमिकों और विशेष जरूरतों के बच्चे इस अवसर का लाभ उठा सकते हैं। ''अधिनियम के कार्यान्वयन के लिए दिशानिर्देश बताते हैं कि ऐसे बच्चों के लिए शिक्षा सुनिश्चित करने के लिए पर्याप्त शिक्षा कि न केवल उपलब्धता की आवश्यकता है तथा अपने घरों की कुछ दूरी के अन्दर स्कूल की जरूरत भी है, तथा इसकी शैक्षिक आवश्यकताओं और पारंपरिक रूप से बाहर रखी गयी जातियों को समझने की जरूरत है। ''यह देखा गया है कि शिक्षा प्रक्रिया हाशिए के समुदायों के बच्चों की उपस्थिति के लिए अनुकूल परिस्थितियों का निर्माण करने में न केवल विफल है, बल्कि स्कूलों में बच्चों की सीखने की जरूरतों (ह्यूमन राइट्स वॉच, 2014) या स्कूल छोड़कर बाद में वापस आने वाले बच्चों के लिए असक्षम है: 5–6।

सच्चर समिति, भारत सरकार, ने ठीक ही बताया है– ''हालांकि अभाव की धारणा मुसलमानों के बीच व्यापक है, वहाँ आजादी के बाद कोई व्यवस्थित प्रयास देश में धार्मिक अल्पसंख्यकों की हालत का विश्लेषण करने के लिए नहीं किया गया है।'' समिति ने यह भी कहा, संयुक्त राष्ट्र घोषणा के अनुसार, जातीय, धार्मिक और भाषाई अल्पसंख्यकों की पदोन्नति और इस तरह के अल्पसंख्यकों से संबंधित व्यक्तियों के अधिकारों की रक्षा, जिन देशों में वे रहते हैं वहाँ की राजनीतिक और सामाजिक स्थिरता के योगदान में आवश्यक है उनकी आकांक्षाओं को पूरा करना और उनके अधिकारों को सुनिश्चित करना और सभी व्यक्तियों की गरिमा और समता को स्वीकार करना भागीदारी और उनके विकास के क्रम को आगे बढ़ाता है। यह बदले में समूहों और व्यक्तियों के

बीच तनाव को कम करने में योगदान देता है, इन कारकों के लिए प्रमुख निर्धारक हैं- स्थिरता और शांति। सभी विकसित देशों और अधिकांश विकासशील लोग अल्पसंख्यकों के हितों की देखभाल के लिए उचित जोर देते हैं। इस प्रकार, किसी भी देश में, राज्य के कार्यकलापों में अल्पसंख्यकों पर विश्वास एक निष्पक्ष तरीके से एक राज्य बनने का एसिड परीक्षण है।

स्वतंत्रता पश्चात अल्पसंख्यकों के मुद्दों पर बहस, अभाव और सामाजिक-आर्थिक समस्याओं के बाद यह कहा जाता है कि भारत ने इस क्षेत्र में महत्वपूर्ण वृद्धि और विकास हासिल किया है, और स्वास्थ्य, साक्षरता, शिक्षा के स्तर के रूप में गरीबी को कम करने और महत्वपूर्ण मानव विकास संकेतकों में सुधार लाने में सफल रहा है। संकेत मिले हैं कि सभी धार्मिक समुदायों और सामाजिक समूहों के बीच समान रूप से विकास प्रक्रिया के लाभों को साझा किया है, इनमें से, मुस्लिम, जो देश में 13.4 प्रतिशत आबादी का गठन करते हैं, सबसे बड़ा अल्पसंख्यक समुदाय, मानव विकास संकेतकों के अधिकांश के संदर्भ में गंभीरता से पिछड़ रहा है। जाहिर है, मेवात जिले में मुसलमानों की सामाजिक-आर्थिक और शैक्षिक स्थिति का विश्लेषण करने की जरूरत है। मेवात जिले का अध्ययन मुसलमानों की सामाजिक-आर्थिक और सांस्कृतिक स्थिति और तत्काल समस्याओं, गैर नामांकन और विद्यालय छोड़ने वालों के अध्ययन के लिए किया जा सकता है, एक आदर्शवादी प्राथमिक स्तर पर विद्यालय के छात्रों को आसानी से आगे स्पष्टीकरण और समेकन के लिए इंगित किया जाता है।

हालांकि विभिन्न मुद्दों में मतभेद हैं, मुस्लिम पहचान कई मायनों में बच्चों को अच्छे स्कूलों में प्रवेश कराने के साथ-साथ एक घर खरीदने में भी असमर्थ रहते हैं, एक ही पसंद के इलाकों में एक अच्छा घर या किराए पर संपत्ति मुसलमानों के लिए लेना काफी मुश्किल हो रहा है। मालिकों की अनिच्छा से मुसलमानों को किराए पर घर लेने/बेचने से 'गैर-मुस्लिम' बस्तियां ''परहेज'' करती हैं। मुस्लिम पहचान एक व्यापक मुद्दा बन गया है और यह अच्छे शिक्षण संस्थानों के लिए अपने बच्चों को स्वीकार करने के रास्ते में भी आ गयी है। इससे मुस्लिम सांप्रदायिक स्कूलों में वृद्धि हुई है, जो कुछ विद्वानों के मुताबिक मुसलमानों के लिए अच्छी शिक्षा का एकमात्र स्रोत है। मुसलमानों का बहुमत जाहिर तौर पर 'नियमित मुख्यधारा के स्कूलों में अपने बच्चों को भेजना पसंद करेगा और यह तर्क दिया गया है कि सांप्रदायिक संस्थाओं के तहत अल्पसंख्यकों का अधिकार संविधान में दिया गया है, इसका यह मतलब नहीं कि उनका एकमात्र विकल्प केवल यही है। मेवात मुद्दा भी एक मुद्दा है, जहां गरीबी और निरक्षरता प्राथमिक शिक्षा के प्रति लापरवाही को बढ़ाती है।

अध्ययन का उद्देश्य

अ. हरियाणा के मेवात जिले में घसेरा गांव से संबंधित मुसलमानों के सामाजिक-आर्थिक प्रोफाइल की पहचान और परिभाषित करना।

ब. आधुनिक शिक्षा, विशेष रूप से प्राथमिक शिक्षा पर क्षेत्र के मुसलमानों की धारणा को समझना।

स. इस क्षेत्र में बच्चों के शैक्षिक स्तर और स्कूल और शिक्षा के बारे में उनकी धारणा की जांच करना।

द. लड़कों और लड़कियां, दोनों के लिए प्रारंभिक शिक्षा प्राप्त करने में कमियां पहचान करना।

य. बच्चों और माता पिता की शिक्षा के प्रति औपचारिक और अनौपचारिक रवैया का अध्ययन करना।

अध्ययन की प्रासंगिकता

सामाजिक-आर्थिक स्थिति पर एक विशेष जिले की शैक्षिक स्थिति का अध्ययन विशेष रूप से, अल्पसंख्यक मुसलमानों के लड़कों और लड़कियों की प्राथमिक शिक्षा में नुकसान के कारणों की पहचान करने के लिए यह अध्ययन महत्वपूर्ण है। किसी विशेष समुदाय या एक राज्य या एक जिले के पिछड़ेपन पर अध्ययन, इसलिए महत्वपूर्ण है कि इस क्षेत्र पर अध्ययन कम किया गया है और यह अध्ययन अनिवार्य रूप से लाभकारी होगा। यह अध्ययन मेवात के मुस्लिम घरों के बीच किए गए अध्ययन पर आधारित है। हरियाणा का यह अध्ययन सामान्य रूप से घरेलू और विशेष रूप से बच्चों की शैक्षिक स्थिति पर अपना ध्यान केंद्रित करता है।

राज्य विशेषता

हरियाणा की जनसंख्या, 2011 की जनगणना के अनुसार, 2,53,51,462 थी, 1,34,94,734 पुरुषों और 1,18,56,728 महिलाओं के साथ हरियाणा के समाज की संरचना है। धर्म ने हमेशा हरियाणा की संरचना को मुख्य आधार प्रदान किया है। वर्तमान में हरियाणा में हिंदुओं की आबादी लगभग 90 प्रतिशत, सिख 6.2% मुसलमान 4.05% और ईसाई 0.10% है।

2001 के बाद, आंकड़े बताते हैं कि राज्य ने साक्षरता के मामले में बहुत प्रगति की है। लड़कियों की साक्षरता दर में भी सुधार हुआ है, लेकिन अभी भी लैंगिक अंतर राज्य में 18. 61% के आसपास से बहुत अधिक है खाप 'पंचायतों और अन्य बुराइयों ने महिलाओं की शिक्षा के खिलाफ काम करने में मदद की है। राज्य की साक्षरता दर 76.64% है जो राष्ट्रीय औसत से ऊपर चली गयी है और पिछली जनगणना से इसमें सुधार हुआ है।

इस अध्ययन में हरियाणा में मुस्लिम आबादी की सामाजिक-आर्थिक और शैक्षिक पहलुओं की परिकल्पना की गई। भारत में 2011 की जनगणना के अनुसार मुस्लिम आबादी कुल जनसंख्या का 14.2 प्रतिशत थी। हालांकि, पुरुष-महिला जनसंख्या की संरचना अभी तक जारी नहीं की गई है, लेकिन 2001 की जनगणना में 71,374,134 पुरुष और 66,814,106 महिलाएं थीं। लिंग अनुपात 1000 पुरुष पर प्रति 936 महिलाओं का है। पुरुष साक्षरता दर 59.10 प्रतिशत है और महिला साक्षरता दर 50.10 प्रतिशत है। कुल जनसंख्या में से, 88,794,744 ग्रामीण क्षेत्रों में रहते हैं और 49,393,496 शहरी क्षेत्रों में रहते हैं। 43,296,093 व्यक्ति कामगार है, 8,979,686 किसान और 95,45,976 कृषि श्रमिक हैं।

2011 की जनगणना के अनुसार हरियाणा राज्य में मुस्लिम एकाग्रता लगभग 7% है, जिसमें पिछली जनगणना से 1.2% की वृद्धि हुई है। मुसलमान राज्य भर में बिखरे हुए हैं लेकिन मेवात समुदाय में सर्वोच्च एकाग्रता है। राज्य के अन्य जिलों की तुलना में यह कम से कम विकसित जिला है। जिले की औसत साक्षरता दर 56% है और महिला साक्षरता दर 36.58% है। जिले में शिक्षा की खराब स्थिति है जिसे कई शोधकर्ताओं को आकर्षित किया है। शिक्षा के क्षेत्र में समुदाय की निराशाजनक स्थिति का अध्ययन करने के लिए यह चिंता का विषय है। इस अध्ययन में हमने सभी पहलूओं को देखने की कोशिश की है जो समुदाय के बच्चों की शिक्षा को प्रभावित कर रहे हैं।

तालिका-1

हरियाणा के जिलों में साक्षरता प्रतिशत

जिले	साक्षरता		
	कुल	पुरुष	महिला
गुरुग्राम	84.44	90.27	77.64
पंचकुला	83.44	88.65	77.48
फरीदाबाद	83.04	89.94	75.17
अंबाला	82.89	88.47	76.64
रेवाड़ी	82.23	9292	70.54
सोनीपत	80.83	89.4	70.88
झज्जर	80.83	89.44	70.96
रोहतक	80.37	88.42	71.19
यमुनानगर	78.93	85.06	71.99

क्रमशः

महेंद्रगढ़	78.87	91.28	65.25
पानीपत	77.46	85.45	68.23
भिवानी	76.74	87.39	64.8
कुरुक्षेत्र	76.7 0	83.46	69.18
करनाल	76.44	83.73	68.29
हिसार	73.24	82.79	62.31
जींद	72.73	82.49	61.58
कैथल	70.56	79.33	60.69
सिरसा	70.35	78.64	61.16
पलवल	70.32	82.6	56.4
फतेहाबाद	69.13	78.1	59.29
मेवात	56.14	72.98	37.58
हरियाणा	76.64	85.38	66.77
भारत	74.04	82.14	65.46

स्रोत: जनगणना 2011

हरियाणा में स्कूल शिक्षा

हरियाणा में स्कूल शिक्षा प्रणाली अन्य भारतीय राज्यों से पीछे नहीं है, यहाँ पूर्व-प्राथमिक, प्राथमिक, माध्यमिक, उच्च माध्यमिक और डिग्री शिक्षा रूप से उपलब्ध है। हरियाणा, में 10,399 प्राथमिक और 3838 माध्यमिक विद्यालय सरकारी और अन्य संगठनों के विद्यालय उपलब्ध हैं। सरकारी स्कूलों को राज्य सरकार के शिक्षा विभाग द्वारा प्रशासित किया जाता है, जिसे मोटे तौर पर हरियाणा शिक्षा बोर्ड कहा जाता है। अधिकांश निजी स्कूल सीबीएसई के तहत संबद्ध हैं, और आईसीएसई और अन्य बोर्ड स्कूल भी राज्य में कार्य कर रहे हैं।

मेवात जिला

2005 में जिलों के पुनर्गठन के बाद हरियाण में 21 जिलों में मेवात, सबसे पिछड़े क्षेत्रों में से एक है। इसी वर्ष में गुड़गांव जिले से इसे अलग कर दिया और एक अलग जिले के रूप में इसे बनाया गया था। मेवात न केवल गुड़गांव के निकट है, लेकिन यह ऐतिहासिक पृष्ठभूमि के साथ समृद्ध सांस्कृतिक विरासत की भूमि भी है। रेवाड़ी जिला इसके पूर्व में

है और पश्चिम में पलवल जिला है। दिल्ली राष्ट्रीय राजधानी क्षेत्र के पास है और राष्ट्रीय राजधानी क्षेत्र यानी गुरुग्राम जिले की उत्तरी सीमा से घिरा हुआ है, दक्षिण में राजस्थान राज्य के साथ यह जिला अपनी सीमा साझा करता है और यहां ज्यादातर समतल भूमि है। इसे अल्पसंख्यक एकाग्रित जिलों में से एक के रूप में पहचाना गया है जो विकास के सामाजिक-आर्थिक मानकों के मामले में गंभीर रूप से पिछड़ गया है। वर्ष 2005 में मेवात जिले के लिए सीमांकन किया गया, कृषि और औद्योगिक रूप से पिछड़े क्षेत्रों के साथ इस जिले में महत्वपूर्ण बुनियादी ढांचा की कमी है जैसे कि शिक्षा, स्वास्थ्य, बुनियादी सुविधाएं; परिवहन और वाणिज्य के विकास के लिए रेलवे लिंक इत्यादि।

मेवात जिले में पाँच ब्लॉक हैं- झिरका, ताउरु, पुन्हाना, नगीना, नूँह और फिरोजपुर। जिला अत्यधिक दक्षिण में स्थित है और बुनियादी ढांचे के साथ इसे विकसित नहीं किया गया है जो कि उसके सामाजिक-आर्थिक विकास के लिए आवश्यक है। मेवात जिले में रहने वाले मुसलमानों को मेवो कहा जाता है। वे राजपूत जाति से संबंधित मुख्य रूप से कृषि और देहाती समूह थे। यह महत्वपूर्ण है कि मेवो, जो उत्तरी भारत के प्रारंभिक आर्य आक्रमणकर्त्ताओं से अपने को जोड़ते हैं और खुद को क्षत्रिय कहते हैं और इन्होंने काफी हद तक एक आश्चर्यजनक रूप से अपनी सामाजिक और सांस्कृतिक परंपरा को संरक्षित किया हुआ है। 14वीं सदी में तुगलक वंश और औरंगजेब के शासन के दौरान इन्होंने इस्लाम कबूल किया, जो अभी भी उनके विशिष्ट जातीय-सांस्कृतिक पहचान की विशेषता को दर्शाता है।

मेवात की जनसंख्या

नव-निर्मित मेवात जिले में मेवो मुसलमानों का बहुमत है। गुड़गांव को काट कर बनाये गये इस जिले में अन्य धार्मिक अल्पसंख्यक समूहों की एक नगण्य आबादी है, यानी सिख, जैन, और ईसाइयों आदि की। पूर्व गुड़गांव में, 16,60,289 की कुल आबादी में से मुस्लिम आबादी की एकाग्रता 37.22 प्रतिशत थी जो हिंदू जनसंख्या 61.83 प्रतिशत के बाद सबसे अधिक है। यह ध्यान रखें कि मेवात जिला तत्कालीन गुड़गांव और फरीदाबाद जिलों, को काटकर 20वें जिले के रूप में 4 अप्रैल, 2005 को अस्तित्व में आया। जिले में पांच ब्लॉक हैं। नूंह, ताउरु, नगीना, फिरोजपुर झिरका, पुनहाना। जिला मुख्यालय नूंह में स्थित है।

मेवात जिले की कुल जनसंख्या 10.89 लाख थी। जिले में ग्रामीण क्षेत्रों में रहने वाली जनसंख्या 88 प्रतिशत है और 12 प्रतिशत शहरी क्षेत्रों में रहती है, जिला परंपरागत रूप से ग्रामीण है। मेवात जिले में जनसंख्या का तहसीलवार वितरण दर्शाता है कि

पुनहाना में सबसे अधिक आबादी है। (यानी कुल जनसंख्या का 24.54 प्रतिशत है), फिरोजपुर और झिरका में जनसंख्या का अधिकतम घनत्व 21.42 प्रतिशत के साथ दूसरे स्थान पर है, ताउरु और हाथिन में क्रमश: कुल मेवात की आबादी का 20.81 और 20. 51 प्रतिशत रहता है। हाथिन फरीदाबाद जिले का हिस्सा था। नूंह तहसील, में 12.69 प्रतिशत के साथ आबादी का सबसे कम प्रतिशत है। तहसील के लिए जनसंख्या गणना जिले के लिए आबादी का अनुमान लगाने के लिए की गई है। यह नव निर्मित मेवात जिले के वेबसाइट पर उपलब्ध है। आबादी का अनुमान हालांकि भारत की जनगणना 2001 के गांव निर्देशिका से भी की गई है।

तालिका-2

हरियाणा और मेवात की जनसंख्या

मद	लिंग	कुल	ग्रामीण	शहरी
मेवात	कुल	1089263	965,157	124,106
	पुरुष	571,162	506,086	65,076
	महिला	518101	459,071	59030
हरियाणा	कुल	25351462	16509359	8842103
	पुरुष	13494734	8774006	4720728
	महिला	11856728	7735353	4121375

स्रोत: जनगणना 2011

मेवात जिले में लिंग अनुपात

मेवात में लिंग अनुपात, 2001 की जनगणना के आंकड़े के अनुसार प्रति 1000 पुरुष पर 899 की तुलना में 906 प्रति 1000 पुरुष था। राज्य का औसत 879 प्रति 1000 पुरुष है। मेवात जिले में अन्य जिलों की तुलना में लिंगानुपात के आंकड़ें आगे बढ़े हैं। भारत में औसत राष्ट्रीय लिंग अनुपात 2011 की जनगणना की नवीनतम रिपोर्ट के अनुसार 940 प्रति एक हजार पुरुष है, जो मामूली रूप से बढ़ा है।

मेवात क्षेत्र और पलवल जिले के हाथिन तहसील में 85 प्रतिशत मेवो इस्लाम धर्म को मानते हैं। यह देखा गया है कि 'मेवो' कन्या भ्रूण हत्या प्रथाओं के विरुद्ध हैं। नतीजतन, भारत के पूरे उत्तर-पश्चिमी क्षेत्र (जनगणना, हरियाणा 2011) में सबसे अधिक बाल लिंग अनुपात (906) इस जिले में दर्शाते हैं। वर्तमान अध्ययन क्षेत्र घसेरा गांव में 999 महिला प्रति हजार पुरुष पर हैं।

मेवात की साक्षरता : अन्य जिलों के साथ तुलना

जनगणना के आंकड़े 2011 स्पष्ट रूप से बताते हैं कि हरियाणा में जिले के रूप में मेवात जिले की साक्षरता दर सबसे कम है। राज्य साक्षरता 77% है जो राष्ट्रीय औसत से अधिक है, जहां पुरुष (85%) और महिला (67%) साक्षर हैं। मेवात जिले ने निराशाजनक 56.14% के साथ राज्य में सबसे कम साक्षरता दर हासिल की है साक्षरता का स्तर न केवल राज्य स्तर पर परंतु राष्ट्रीय स्तर पर भी नीचे है। यहाँ पुरुष साक्षरता (72.98%) जबकि महिला साक्षरता (37.58) राज्य में सबसे कम तो है परंतु एक छोटे सुधार के लक्षण दिखाई देते हैं।

2011 की जनगणना के अनुसार हरियाणा की साक्षरता दर 76.64% है जो राष्ट्रीय औसत 74.04% से अधिक है। इसी के साथ लिंग साक्षरता में एक व्यापक अंतर है। पिछले दशक में साक्षरता दर में 11.84% की वृद्धि हुई है। अन्य भारतीय राज्यों की साक्षरता दर के मुकाबले यह एक सभ्य स्थिति है। पुरुष साक्षरता स्तर की स्थिति 85.4% है, जबकि महिला शिक्षा की दर 66.8% है। मेवात की जनगणना पर सबसे महत्वपूर्ण दोष में से एक शायद पुरुष और महिला साक्षरता के बीच सबसे बड़ा अंतर, 35.4% है।

मेवात जिले में कुल साक्षरता प्रतिशत 56.14% है, महिलाओं के लिए 37.58% और पुरुषों के लिए 72.98% है। एक प्रमुख अंतराल (35.4%) पुरुष और महिला साक्षरता के बीच है। महिलाओं के लिए राज्य प्रतिशत 66.77 की औसत के विरुद्ध महिला साक्षरता मेवात के लिए केवल 37.58% है। ये आंकड़े दर्शाते हैं कि 2001 की जनगणना से महिला साक्षरता में वृद्धि हुई है। इसी समय के दौरान महिला साक्षरता राज्य के अन्य जिलों से भी बदतर है।

आईएचडी मानव विकास संस्थान के आधार रेखा सर्वेक्षण में यह कहा गया कि, प्राथमिक विद्यालयों में 78.14% गांवों में विद्यमान है, लेकिन मध्य, हाई स्कूल और वरिष्ठ माध्यमिक विद्यालयों का क्रमश: 9.30, 6.91 और 3.77% है। इसलिए लड़कियों की औपचारिक शिक्षा उपेक्षा से ग्रस्त है। मुस्लिम समुदाय से संबंधित लड़कियां उच्च विद्यालय जो गांव में स्थित नहीं हैं, के बजाए मदरसा जाने के लिए पसंद करती हैं। माता-पिता के पास मदरसा के लिए अपनी लड़कियों को भेजने के अलावा कोई विकल्प नहीं है। कई माता-पिता जो अपनी लड़कियों को स्कूल भेजना चाहते हैं वे उन्हें उन स्कूलों के लिए भेजना चाहते हैं जो केवल लड़कियों के लिए ही हों।

कार्य प्रणाली

अध्ययन अल्पसंख्यक छात्रों के लिए, जो हरियाणा के मेवात जिले में मुस्लिम समुदाय के हैं और असंख्य कठिनाइयों और चुनौतियों का सामना कर रहे हैं, उनके लिए महत्वपूर्ण

है। उल्लंघन और उत्पीड़न ने माता-पिता को अपने छात्रों, विशेष रूप से गांव के स्कूल से लड़कियों को वापस लेने के लिए मजबूर किया, जिससे जिला पहले की तुलना में अधिक अशिक्षित हो गया।

अध्ययन के नमूने

हरियाणा में 21 जिलों में से मेवात उच्चतम मुस्लिम आबादी का जिला है और सभी मानव विकास सूचकांक (एचडीआई) में सबसे कम विकसित है। एक ब्लॉक जिले से चुना गया था जहां कोई भी गैर-सरकारी संगठन (एनजीओ) समुदाय के मानव विकास के किसी भी महत्वपूर्ण सूचकांक पर काम नहीं कर रहा है। इसके अलावा, एक गांव जो उच्चतम मुस्लिम बहुल है और शिक्षा के क्षेत्र में निराशाजनक हालत से गुजर रहा है, चुना गया था। गांव में एक हजार से अधिक घरेलू परिवार हैं, चार मोहल्लों, से 150 परिवारों को बिना पूर्वाग्रह चयन किया गया। प्रश्नावली लोगों की उपस्थिति में तुरन्त भर दी गयी।

आंकड़ा संग्रहण

क्षेत्र अध्ययन विशेष जिले, पंचायत और अन्य निर्वाचित निकायों में शिक्षा की स्थिति की पहचान के लिए अनुसंधान हेतु पूर्व आवश्यकता है। अध्ययन के तहत क्षेत्रों को जानने और सीखने की प्रक्रिया से अच्छी तरह से स्थापित एक समस्या प्रयोगशाला बन जाता है। प्राथमिक और माध्यमिक स्रोतों के अध्ययन आंकड़ा संग्रह में इस्तेमाल किए गए हैं। अनुसूची में घर के चयनित नमूना उत्तरदाताओं और उनके परिवारों की सामाजिक-आर्थिक और शैक्षिक विशेषताओं पर सवाल होते हैं, जिसके लिए एक सेट विकसित किया गया था। प्राथमिक आंकड़ा के अलावा, इसी तरह के स्रोतों जैसे भारत की जनगणना, राज्य शिक्षा विभाग, डाईस, विभिन्न पत्रिकाओं से प्रकाशित लेख, किताबें आदि से अध्ययन के लिए माध्यमिक आंकड़ा एकत्र किया गया।

आंकड़ा विश्लेषण

एकत्र किए गए आंकड़ें, जैसे उम्र, शिक्षा, आय, व्यवसाय, प्रकार और परिवार (आर्थिक, शैक्षिक, विवाह और परिवार और राजनीतिक) के आकार आदि के रूप में विभिन्न संकेतकों का उपयोग और उत्तरदाताओं के द्वारा नमूना समूहों में से प्रत्येक के लिए एस. पी.एस.एस. के माध्यम से विश्लेषण किया गया था और सांख्यिकी तकनीक अर्थात, सरल 'प्रतिशत' का उपयोग डेटा के विश्लेषण में किया गया था।

यह अध्ययन, घसेरा गांव, ब्लॉक नूह, जिले मेवात में आयोजित किया गया। यह जिले का सबसे बड़ा गांव है और स्वतंत्रता प्राप्ति के बाद इस गांव का दौरा महात्मा गांधी ने किया था, और इसलिए, यह गांधी ग्राम घसेरा भी कहा जाता है। कई दशकों से यह सुर्खियों

में रहा है कि गांव में सर्वोच्च मुस्लिम आबादी है और यहाँ राज्य में सबसे कम साक्षरता दर है। जिले में मुस्लिम आबादी मुख्य रूप से 'मेवो' की है जो बहुमत में है। जिला मुख्यालय नूंह में स्थित है। जिले में 531 गांव हैं जिनमें से 490 बसे हुए हैं और 41 निर्जन हैं।

गांव शिक्षा समिति

यह पहचान की गई है कि जनता की भागीदारी और आधारभूत स्तर पर भागीदारी के सफल क्रियान्वयन के लिए आवश्यक है प्रारंभिक शिक्षा का सार्वभौमीकरण, जो सर्व शिक्षा अभियान का प्रमुख लक्ष्य है। वी.ई.सी सदस्यों की भूमिका और प्रदर्शन, आम तौर पर स्कूल की इमारत के रखरखाव के संबंध में अनुकूल नहीं पाया गया। शिक्षण एक महत्वपूर्ण पहलू के रूप में माता-पिता से संपर्क – सीखने की प्रक्रिया, राज्य कार्यक्रमों का क्रियान्वयन और

तालिका-3
गांव में बच्चों की शैक्षिक स्थिति

		गांव में बच्चों की शैक्षिक स्थिति						
आयु		शिक्षा का स्तर						
	छोड़ दिया	दाखिला नहीं	प्राथमिक	उच्च प्राथमिक	माध्यमिक	वरिष्ठ माध्यमिक	स्नातक	कुल
0–5 साल	18	99	7	0	0	0	0	124
	3.0%	16.3%	1.1%	0.0%	0.0%	0.0%	0.0%	20.4%
6–10 साल	20	72	110	0	0	0	0	202
	3.3%	11.8%	18.1%	0.0%	0.0%	0.0%	0.0%	33.2%
11–13 साल	29	26	32	32	4	0	0	123
	4.8%	4.3%	5.3%	5.3%	.7%	0.0%	0.0%	20.2%
14–17 साल	45	21	3	16	23	1	0	109
	7.4%	3.4%	.5%	2.6%	3.8%	.2%	0.0%	17.9%
18–25 साल	17	24	0	0	2	6	2	51
	2.8%	3.9%	0.0%	0.0%	.3%	1.0%	.3%	8.4%
कुल	129	242	152	48	29	7	2	609
	21.2%	39.7%	25.0%	7.9%	4.8%	1.1%	.3%	100%

स्रोत: परिवार सर्वेक्षण, 2014

स्कूल के प्रशासनिक कार्यों में भी वी.ई.सी. के सदस्यों को स्कूलों के प्रशासनिक कार्यों की गतिविधियों से संबंधित प्रशिक्षण की आवश्यकता है। हालांकि प्रारंभिक शिक्षा के विस्तार में हाल के वर्षों में यह मात्रात्मक रूप में केवल देखना पर्याप्त नहीं है। समुदाय की भागीदारी गुणवत्ता की शिक्षा लाने के लिए अत्यंत महत्वपूर्ण है इसलिए, गांव शिक्षा समिति की आवश्यकता और हितों को स्कूल के सुचारु कार्य के लिए संबोधित किया जाना चाहिए और बच्चों को गुणवत्तापूर्ण शिक्षा की सुविधा प्रदान करना होगा।

तालिका-3 सर्वेक्षित गांव से नमूना बच्चों की शिक्षा प्राप्ति का प्रतिनिधित्व करता है। यह बहुत ही चौंकाने वाला है कि आरटीई कानून के बाद भी बड़ी संख्या में बच्चों को या दाखिल नहीं किया जाता है या उन्हें स्कूल बीच में छोड़ना पड़ता है। इलाके के 60% से अधिक बच्चों को नामांकित नहीं किया गया है और अधिकांश ने शुरुआती वर्षों में स्कूल छोड़ दिया है। अगर हम आंकड़े देखते हैं तो यह स्पष्ट है कि कुल छोड़ने वालों की संख्या 20% से अधिक है। जबकि 22% से अधिक बच्चों को विभिन्न कारणों से औपचारिक स्कूल में नामांकित नहीं किया गया है।

जहां तक प्राथमिक शिक्षा का सवाल है, कुल बच्चों के लगभग 25% प्राथमिक स्तर पर विभिन्न वर्गों में दाखिला लेते हैं, लेकिन उनमें से ज्यादातर कक्षा 5 पूरा करने से पहले ही स्कूली शिक्षा छोड़ते हैं। यह तीव्र ह्रास है यानि कि प्राथमिक से उच्च प्राथमिक तक के बच्चों के नामांकन में 77%। इसी प्रकार, उच्च प्राथमिक स्तर पर सिर्फ 8% और लगभग 5% बच्चों को माध्यमिक स्तर की शिक्षा में नामांकित किया जाता है। उपरोक्त आंकड़े बताते हैं कि इलाके के लोग औपचारिक शिक्षा में ज्यादा दिलचस्पी नहीं ले रहे हैं। एक बार जब वे अपनी प्राथमिक शिक्षा पूरी करते हैं तो बच्चों को शायद ही स्कूल भेजा जाता है। सीनियर सेकेंडरी में 1 प्रतिशत और 0.3% स्नातक स्तर की पढ़ाई में नामांकित हैं। माता-पिता स्कूल के लिए अपने लड़कियों को नहीं भेजते, अगर वह 10 या 11 वर्ष की उम्र तक पहुंचती है तो कुल नमूना छात्र में से कोई भी बच्चा, जो स्कूल जा रहा था, स्कूल से किसी भी प्रकार की प्रोत्साहन/छात्रवृत्ति प्राप्त नहीं कर रहा है। जैसा कि तालिका-4 से स्पष्ट है कि 459 बच्चों में से जिन्होंने स्कूल में भाग लिया है किसी को भी किसी तरह की राशि नहीं मिली है। हालांकि, बच्चों की एक सीमांत संख्या को दो साल पहले स्कूल से कुछ राशि प्राप्त हुई थी। छात्रों के माता-पिता ने छात्रवृत्ति प्राप्त करने की सभी प्रक्रियाओं का पालन किया है जैसे बैंक में खाता खोलना और इसे बनाए रखना। हालांकि, कुछ अभिभावकों ने खाता खोलने के समय कुछ राशि जमा की है लेकिन वे

तालिका-4
स्कूल से छात्रवृत्ति प्राप्त कर रहे छात्र

लिंग	छात्रवृत्ति		कुल
	पात्र नहीं है	नहीं	
लड़का	75	287	362
	20.7%	79.3%	100.0%
लड़की	75	172	247
	30.4%	69.6%	100.0%
कुल	150	459	609
	24.6%	75.4%	100.0%

स्रोत: घरेलू सर्वेक्षण, 2014

गरीबी के कारण खाते को सक्रिय रखने के लिए न्यूनतम शेष राशि को बनाए रखने में सक्षम नहीं हो पाए हैं।

तालिका-5 दर्शाती है कि ड्रॉपआउट वाले बच्चे स्कूल में नियमित रूप से थे, जबकि 4.5 प्रतिशत ड्रापआउट बच्चे इससे पहले स्कूल में अनियमित थे।

तालिका-5
ड्रापआउट से पहले छात्रों की उपस्थिति

लिंग	ड्रापआउट से पहले छात्रों की उपस्थिति					
	नामांकित/ नामांकित नहीं	नियमित	लगभग नियमित	कुछ हद तक अनियमित	पूरी तरह अनियमित	कुल
लड़का	273	45	23	20	1	362
	75.4%	12.4%	6.4%	5.5%	.3%	100.0%
लड़की	210	26	5	6	0	247
	85.0%	10.5%	2.0%	2.4%	0.0%	100.0%
कुल	483	71	28	26	1	609
	79.3%	11.7%	4.6%	4.3%	.2%	100.0%

स्रोत: परिवार सर्वेक्षण, 2014

तालिका-6 में गांव से बच्चों की शिक्षा प्राप्ति का प्रतिनिधित्व दर्शाया गया है। यह बहुत ही चौंकाने वाला सर्वेक्षण है कि आरटीई कानून के बाद भी बड़ी संख्या में बच्चों को या तो बीच में दाखिल नहीं किया जाता है या स्कूल बीच में छोड़ देते हैं। इलाके के 60% से अधिक बच्चों को स्कूली शिक्षा में नामांकित नहीं किया गया है या स्कूल शुरुआती वर्षों में ही छोड़ दिया गया है। अगर हम आंकड़े देखते हैं तो यह स्पष्ट है कि कुल छोड़ने वालों की संख्या 20% से अधिक है। जबकि 22% से अधिक बच्चों को विभिन्न कारणों से औपचारिक स्कूल में नामांकित नहीं किया जाता है।

जहां तक प्राथमिक शिक्षा का सवाल है, कुल बच्चों में से करीब 25% प्राथमिक स्तर पर विभिन्न वर्गों में दाखिला लेते हैं, लेकिन उनमें से ज्यादातर कक्षा 5 से पहले स्कूली शिक्षा छोड़ देते हैं। यह बहुत स्पष्ट है कि तीव्र ह्रास हुआ है। प्राथमिक से उच्च

तालिका-6
गांव में बच्चों की शैक्षिक स्थिति

आयु	शिक्षा का स्तर							
	ड्राप आउट	दाखिला नहीं	प्राथमिक	उच्च प्राथमिक	माध्यमिक	वरिष्ठ माध्यमिक	स्नातक	कुल
0-5	18	99	7	0	0	0	0	124
साल	3.0%	16.3%	1.1%	0.0%	0.0%	0.0%	0.0%	20.4%
6-10	20	72	110	0	0	0	0	202
साल	3.3%	11.8%	18.1%	0.0%	0.0%	0.0%	0.0%	33.2%
11-13	29	26	32	32	4	0	0	123
साल	4.8%	4.3%	5.3%	5.3%	.7%	0.0%	0.0%	20.2%
14-17	45	21	3	16	23	1	0	109
साल	7.4%	3.4%	.5%	2.6%	3.8%	.2%	0.0%	17.9%
18-25	17	24	0	0	2	6	2	51
साल	2.8%	3.9%	0.0%	0.0%	.3%	1.0%	.3%	8.4%
कुल	129	242	152	48	29	7	2	609
	21.2%	39.7%	25.0%	7.9%	4.8%	1.1%	.3%	100.0%

स्रोत: घरेलू सर्वेक्षण

प्राथमिक तक के बच्चों के नामांकन में 17%, इसी प्रकार, उच्च प्राथमिक स्तर पर सिर्फ 8% और लगभग 5% बच्चों को माध्यमिक स्तर की शिक्षा में नामांकित किया जाता है। उपरोक्त आंकड़े बताते हैं कि इलाके के लोग औपचारिक शिक्षा में ज्यादा दिलचस्पी नहीं ले रहे हैं। एक बार जब वे अपनी प्राथमिक शिक्षा पूरी करते हैं तो बच्चों को शायद ही स्कूल भेजा जाता है; वरिष्ठ माध्यमिक में सिर्फ 1 प्रतिशत और 0.3% छात्र स्नातक स्तर की पढ़ाई में नामांकित हैं।

जहां तक पुरुष और महिला अनुपात की बात है तो यह चिंता का विषय है, अधिकांश माता-पिता अपनी लड़कियों को स्कूल में नहीं भेजते हैं। जो लोग अपनी लड़की को स्कूल भेजते भी हैं, वे 10 साल या 11 साल की उम्र के बाद लड़कियों को स्कूल नहीं भेजते हैं।

तालिका-7
ड्रापआउट बच्चों की उपस्थिति

लिंग	नामांकित/ नामांकित नहीं	नियमित	लगभग नियमित	कुछ हद तक अनियमित	पूरी तरह अनियमित	कुल
लड़का	273	45	23	20	1	362
	75.4%	12.4%	6.4%	5.5%	.3%	100.0%
लड़की	210	26	5	6	0	247
	85.0%	10.5%	2.0%	2.4%	0.0%	100.0%
कुल	483	71	28	26	1	609
	79.3%	11.7%	4.6%	4.3%	.2%	100.0%

स्रोत: घरेलू सर्वेक्षण

तालिका-7 से पता चलता है कि छोड़ने वाले अधिकांश बच्चे स्कूल में नियमित रूप से थे, जबकि छोड़ने वाले बच्चों का 4.5% वह था जो स्कूली शिक्षा छोड़ देने से पहले स्कूल में अनियमित थे।

जहां तक स्कूल की दूरी की बात है तो यह चिंता का विषय है, एक किलोमीटर के भीतर स्कूल बच्चों की लगभग 45% बच्चों के लिए उपलब्ध है, जबकि बच्चों के 15% के लिए यह एक से अधिक किलोमीटर के लिये उपलब्ध है। केवल 0.3% बच्चों को

तालिका-8
स्कूल और घर के बीच दूरी

संस्था का प्रकार	दाखिला नहीं	1 किमी के भीतर	1-2 किमी	3 किमी और अधिक	200 मीटर	कुछ अन्य जगह	कुल
सरकारी	3	257	66	1	13	0	340
	.9%	75.6%	19.4%	.3%	3.8%	0.0%	100.0%
निजी	0	1	25	1	1	1	29
	0.0%	3.4%	86.2%	3.4%	3.4%	3.4%	100.0%
मदरसा	10	13	0	0	71	0	94
	10.6%	13.8%	0.0%	0.0%	75.5%	0.0%	100.0%
दाखिला नहीं	126	2	1	0	17	0	146
	86.3%	1.4%	.7%	0.0%	11.6%	0.0%	100.0%
कुल	139	273	92	2	102	1	609
	22.8%	44.8%	15.1%	.3%	16.7%	.2%	100.0%

स्रोत: घरेलू सर्वेक्षण, 2014

तीन से अधिक किलोमीटर की दूरी स्कूल के लिए तय करनी पड़ती है। बच्चों का 16% मदरसा में नामांकित है जो उनके घर के पास में होता है। इससे पता चलता है, कि माता-पिता और बच्चे मदरसा में भाग लेने में रुचि रखते हैं।

यह गांव राज्य राजमार्ग पर स्थित है और स्कूल राजमार्ग के बगल में गांव के एक कोने पर है। इस गांव में केवल यही एक स्कूल है और यह राजमार्ग के निकट स्थित है, तो कई माता पिता दुर्घटना के डर की वजह से अपने बच्चों को स्कूल नहीं भेजते। जिन बच्चों के घर स्कूल से दूर हैं वे रास्ते में खेलते हैं और स्कूल से छुट्टी मार लेते हैं। 15% बच्चों के लिए स्कूल दूर है, इसलिए उन्हें अपनी प्राथमिक शिक्षा पूरी करने में दिक्कत है और यहाँ ड्रापआउट दर बढ़ने की आशंका बनी रहती है।

यहाँ इलाके में कई बच्चे हैं, जो बीच में अपनी स्कूली शिक्षा छोड़ चुके हैं, लेकिन यह भी आंकड़ों से स्पष्ट है कि जो लोग स्कूली शिक्षा छोड़ चुके हैं वे घर की किसी आर्थिक गतिविधियों में नहीं लगे हुए हैं। कुल नमूना में 27% से अधिक बहुत छोटे बालक हैं जो घर के किसी भी गतिविधियों में लिप्त नहीं हो सकते। स्कूल में 70%

तालिका-9
काम में बाल सहायता

आयु	छोटे बच्चे	पारिवारिक व्यवसाय	दुकान पर बैठना	कोई दूसरा	नहीं	कुल
0 – 5 साल	124	0	0	0	0	124
	20.4%	0.0%	0.0%	0.0%	0.0%	20.4%
6 – 10 साल	43	0	1	0	158	202
	7.1%	0.0%	.2%	0.0%	25.9%	33.2%
11 – 13 साल	0	3	0	1	119	123
	0.0%	.5%	0.0%	.2%	19.5%	20.2%
14 – 17 साल	0	4	0	1	104	109
	0.0%	.7%	0.0%	.2%	17.1%	17.9%
18 – 25 साल	0	1	0	4	46	51
	0.0%	.2%	0.0%	.7%	7.6%	8.4%
कुल	167	8	1	6	427	609
	27.4%	1.3%	.2%	1.0%	70.1%	100.0%

स्रोत: परिवार सर्वेक्षण, 2014

नामांकित हैं, लेकिन वे किसी भी आर्थिक गतिविधियों में परिवार की मदद नहीं करते। कुल नमूना छात्रों के 2.5% आर्थिक गतिविधियों में अपने परिवारों की मदद कर रहे हैं।

तालिका-10 घरेलू आय और परिवारों के आकार जानने के लिए है, यहां 32 परिवार हैं जो 22 प्रतिशत का गठन करते हैं जिनकी कुल आय 5000 रुपए या 5000 रुपये से कम है। जबकि सिर्फ 20 प्रतिशत की घरेलू आय रु. 15000 से ऊपर है। औसतन परिवार का आकार 8 है और यहाँ लगभग 27 और 25 परिवार हैं जिनका आकार क्रमश: 7 और 6 है।

समापन टिप्पणी

अध्ययन स्पष्ट रूप से बताता है, कि मुस्लिम बहुल गांव मेवात, हरियाणा कई शैक्षिक विकारों से पीड़ित हैं। यह पाया गया कि पिछड़ी जाति वर्ग के कई घर हैं और गांव के लोगों के पास कृषि की भूमि नहीं है, जिससे कि वे अन्य कार्य जैसे मजदूरी, ड्राइवरी, क्लीनर

तालिका-10
पारिवारिक आय

घरेलु माप	रु. 5000 के नीचे नहीं	रु. 5001-8000	रु. 8001-10000	रु. 10001-15000	रु. 15001 से ऊपर	परिवार की कुल संख्या
2	1	0	1	0	0	2
	.7%	0.0%	.7%	0.0%	0.0%	1.4%
3	3	5	2	0	0	10
	2.1%	3.4%	1.4%	0.0%	0.0%	6.8%
4	4	2	3	3	1	13
	2.7%	1.4%	2.1%	2.1%	.7%	8.9%
5	1 1	4	2	4	1	22
	7.5%	2.7%	1.4%	2.7%	.7%	15.1%
6	5	8	3	6	3	25
	3.4%	5.5%	2.1%	4.1%	2.1%	17.1%
7	5	6	6	5	5	27
	3.4%	4.1%	4.1%	3.4%	3.4%	18.5%
8	1	2	4	4	3	14
	.7%	1.4%	2.7%	2.7%	2.1%	9.6%
9	0	3	2	6	10	21
	0.0%	2.1%	1.4%	4.1%	6.8%	14.4%
10	2	0	0	1	4	7
	1.4%	0.0%	0.0%	.7%	2.7%	4.8%
1 1	0	1	1	0	1	3
	0.0%	.7%	.7%	0.0%	.7%	2.1%
12	0	0	1	0	0	1
	0.0%	0.0%	.7%	0.0%	0.0%	.7%
14	0	0	0	0	1	1
	0.0%	0.0%	0.0%	0.0%	.7%	.7%
कुल	32	31	25	29	29	146
	21.9%	21.2%	17.1%	19.9%	19.9%	100.0%

स्रोत: परिवार सर्वेक्षण, 2014

आदि करने के लिए मजबूर हैं। हर घर से लगभग एक पुरुष सदस्य या तो ट्रक चालक, क्लीनर या सहायक है। पढ़ाई छोड़ने वाले बच्चे इस काम को बहुत पसंद करते हैं।

यहाँ आंकड़े बताते हैं कि लड़के और लड़कियाँ दोनों की शादी कम उम्र में की जाती रही है और वे शादी की निर्धारित उम्र को पूरा नहीं करते। हालांकि लड़कों के पास विकल्प है हालात ऐसा करने के लिए कुछ मजबूरियां बताते हैं। लड़कियों की शादी और शिक्षा के मामले में कोई भी विकल्प नहीं है, जब वे 10 या 12 साल की उम्र तक पहुँच जाती हैं, परिवार की परंपरा उन्हें स्कूल जाने से रोकती है, भले ही वे तीसरी या चौथी कक्षा में हों। इसके पीछे दो कारण हैं, सबसे पहले, यह परंपरागत संस्कृति है जो माता-पिता को लड़कियों को शिक्षा के लिए स्कूल भेजने के लिए प्रतिबंधित करती है। दूसरे, वहाँ लड़कियों के साथ छेड़खानी का डर है- स्कूल के रास्ते पर और स्कूल में कुछ घटनाओं को लेकर माता-पिता लड़कियों को स्कूल नहीं भेजने का निर्णय लेते हैं। आसपास ऐसा कोई स्कूल इस क्षेत्र में नहीं है जहाँ अभिभावक बिना किसी डर के लड़कियों को स्कूल भेजें।

माता-पिता अपने बच्चे को स्कूल में दाखिला दिलवाने के लिए, उत्सुक लगे लेकिन वे प्राथमिक के बाद स्कूल में बच्चों को रखने में सक्षम नहीं थे। बच्चे अगर दिलचस्पी नहीं दिखाते तो माता-पिता भी उन्हें स्कूल भेजने में कोई दिलचस्पी नहीं रखते। कक्षा एक में स्कूल में नामांकन के बाद, कई बच्चे तो दूसरे वर्ष के बाद से स्कूल छोड़ना शुरू कर देते हैं। बहुत कम छात्र स्थानीय क्षेत्र में प्राथमिक शिक्षा पूरा करने में सक्षम हो पाते हैं। माता-पिता इस समस्या के लिए शिक्षकों को दोषी ठहराते हैं।

मौजूदा स्कूल में शिक्षकों की कमी है। माता-पिता के अनुसार, स्कूल शिक्षक बच्चों पर ध्यान नहीं देते। अगर छात्र स्कूल नहीं आते या फिर बाहर खेलते हैं तो वे कोई भी पहल नहीं करते। कई छात्र जो दोपहर में लंच के लिए घर के लिए आते हैं, वापस स्कूल नहीं जाते। स्कूल में शिक्षण अधिगम परिवेश नहीं है। न तो माता-पिता और न ही छात्र वास्तव में गुणवत्तायुक्त शिक्षा के पक्ष में प्रेरित होते हैं। चाहे यह इस्लामी या आधुनिक शिक्षा हो। मौजूदा परिदृश्य स्कूल में शिक्षा की गुणवत्ता की दरिद्रता को दर्शाता है।

गांव में अनामांकित बच्चों की बड़ी संख्या है- दुराग्रहपूर्ण कारणों से शिक्षा एक अपर्याप्त प्रयास है, जो उचित उपदेश और विधियों के माध्यम से प्राप्त किया जा सकता है। अक्सर यह कहकर कि वे अधिक उम्र के हैं, बच्चों को प्रवेश नहीं दिया जाता है।

घसेरा गांव में 1600 से अधिक घर के लिए केवल एक सरकारी स्कूल है। प्राथमिक विद्यालय जो कई साल की सेवा के बाद अब बंद हो चुका है और एक प्राथमिक स्वास्थ्य केंद्र में तब्दील हो गया है, छात्रों को मध्यम और उच्च माध्यमिक में

स्थानांतरित कर दिया गया है जो गांव के दूसरे कोने पर राज्य राजमार्ग पर स्थित है, और पूरी तरह से असुविधाजनक है। अधिकांश माता-पिता दुर्घटना के डर से दूर के स्कूल के लिए अपने छोटे बच्चों को भेजना नहीं चाहते। यहां तक कि आंगनवाड़ी केंद्र जो गांव के पूर्व स्कूली जरूरतों की पूर्ति करता है ठीक और नियमित रूप से काम नहीं करता है।

यह अध्ययन किया गया है कि शायद 16% माता-पिता सिर्फ बुनियादी स्तर पर इस्लामी शिक्षा प्राप्त की, और 60% से अधिक माता-पिता अनपढ़ हैं, और उनमें से अधिकांश अपने बच्चों को स्कूल भेजने में बहुत आकस्मिक रवैया दिखाते हैं। वे वास्तव में बच्चों की शिक्षा के प्रति उदासीन हैं, उन्हें लगता है कि उनके बच्चों को भविष्य में सरकारी नौकरी नहीं मिलेगी और वे भविष्य में छोटे-मोटे काम ही कर पाएंगे।

माता-पिता को अपने बच्चों के भविष्य पर आशंका हैं कि अगर हमारे बच्चे शिक्षित हो गए और उनको नौकरी नहीं मिली तो वह श्रम वाला काम नहीं करेंगे। यही कारण है माता-पिता उच्च शिक्षा के लिए अपने बच्चों को भेजने के लिए उत्सुक नहीं हैं। बहुत कम माता-पिता जो शिक्षित नहीं हैं, वे अपने बच्चों को शिक्षित होने और लगातार बच्चों की शिक्षा पर ध्यान देते हैं। वे शिक्षकों के साथ लगातार संपर्क में नियमित रूप से रहते हैं और हर मामले में बच्चे का समर्थन करते हैं।

सर्वेक्षण के दौरान यह पाया गया कि अधिकतर परिवारों में अधिक बच्चे हैं; इसलिए गरीबी एक और अवरोध बन गया है। ग्रामीणों को पीने के लिए पर्याप्त पानी नहीं मिलता है, हालांकि देश की राजधानी दिल्ली के बहुत करीब यह गाँव है, लेकिन गांव और बच्चों के शैक्षिक उत्थान के लिए प्रशासन द्वारा या समुदाय द्वारा कोई प्रयास नहीं किया गया है। ग्रामीणों के बीच शिक्षा के प्रति जागरूकता उत्पन्न करने के लिए समुदाय के लोगों को ही माध्यम बनाना पड़ेगा।

संदर्भ

हूमन राइट्स वाच, (2014), ''दे से वी आर डर्टी'': डिनायिंग आन एजुकेशन इन इंडियाज मार्जीनालाइज्ड

भारत सरकार। (2006), सच्चर समिति की रिपोर्ट ।

सिंह, दलबीर और सतपाल सिंह (2014), ईवाल्यूटिंग द मैगनीट्यूड ऑफ फीमेल फायेटिसाईड प्राब्लम्स ऑफ पंजाब एंड हरियाणाए ए रीजनल एनालिसिस, आई.ओ.एस.आर. - जे.एच.एस.एस. समाज विज्ञान और मानविकी जर्नल, वाल्यूम-19, अंक-10, वर्जन-VII.

http://www-icssr-org/Mewat[1]-pdf

परिप्रेक्ष्य
वर्ष 23, अंक 3, दिसंबर 2016

शोध टिप्पणी/संवाद

पारिवारिक वातावरण का किशोरों की शैक्षिक उपलब्धि में योगदान

अक्षय कुमार*

सारांश

शैक्षिक उपलब्धि एक जटिल चर है, यह कई स्वतंत्र चरों पर निर्भर करता है। वर्तमान शोध शैक्षिक उपलब्धि में पारिवारिक वातावरण के योगदान पर केंद्रित है। इसमें सर्वेक्षण विधि का प्रयोग किया गया है तथा सीबीएसई और यू.पी. बोर्ड के 12 सेकेंडरी स्कूलों से कक्षा 9 के 920 छात्र और छात्राओं को रैंडम विधि से चयनित किया गया है। पारिवारिक वातावरण का आकड़ा एकत्र करने के लिए डा. वीना शाह (2012) द्वारा निर्मित उपकरण का प्रयोग किया गया और शैक्षिक उपलब्धि के लिए कक्षा 8 के छात्र-छात्राओं के वार्षिक अंक का प्रयोग किया गया। किशोरों की शैक्षिक उपलब्धि में पारिवारिक वातावरण की विभिन्न विमाओं के योगदान को मापने के लिए प्रतिगमन विश्लेषण विधि का प्रयोग किया गया। निष्कर्ष में यह पाया गया कि पारिवारिक वातावरण की 10 विमाओं से छात्रों की शैक्षिक उपलब्धि में 4 विमाओं का सार्थक योगदान है।

प्रस्तावना

प्रत्येक व्यक्ति के लिए परिवार समाजीकरण का प्रथम संस्थान है। एक बालक अपने परिवार में जीवन उपयोगी गुणों को सीखता है जिससे उसके तीनों पक्षों, जैसे– ज्ञानात्मक, भावात्मक एवं क्रियात्मक पक्षों का विकास होता है। अत: परिवार का वातावरण एक सकारात्मक रूप से बच्चे का विकास करता है। पारिवारिक वातावरण की भूमिका न सिर्फ अनौपचारिक शिक्षा में है अपितु औपचारिक शिक्षा में भी है।

*सहायक प्रोफेसर, जे.एल.एन.एस.पी.जी. कॉलेज, महाराजगंज, उत्तर प्रदेश

पिछले कुछ दशकों में परिवार के सन्दर्भ जैसे परिवार का आकार (सदस्यों की संख्या), परिवार का प्रकार (एकल या संयुक्त), पिछले विभिन्न आँकड़े तथा शोध दर्शाते हैं कि परिवार का आकार और प्रकार छोटा होता जा रहा है। विभिन्न प्रकार के परिवार जैसे संयुक्त परिवार, एकल परिवार, एकल अभिभावक परिवार देखे जा सकते हैं। विभिन्न शोधों से यह प्रमाणित हो चुका है कि पारिवारिक वातावरण का बच्चे के विकास एवं समायोजन में महत्वपूर्ण योगदान होता है (गुप्ता एवं सान्याल, 2009)। परिवार में आपसी समझ बच्चे की शैक्षिक उपलब्धि पर सकारात्मक प्रभाव डालती है तथा दूसरी ओर एक झगड़ालू परिवार में नकारात्मक गुणों, जैसे– कष्ट, अवसाद, नकारात्मक विचार का विकास होता है, जिससे समायोजन प्रभावित होता है। परिवार में अभिभावक और अभिभावक शैली बच्चे के सर्वांगीण विकास में महत्वपूर्ण योगदान देता है। अभिभावक शैली बच्चे के व्यक्तित्व निर्धारण का एक प्रमुख कारण होता है। इस प्रकार परिवार व्यक्तिगत और सामुदायिक जीवन में एक प्रमुख प्रभावकारी संस्थान बन चुका है। इसके बावजूद कि आधुनिक समाज में तीव्रगामी परिवर्तन हो रहे हैं फिर भी परिवार एक नए व्यवहार को नियंत्रित करने वाला प्रमुख कारक है। परिवार एक सामाजिक – जैविक इकाई है जिसका बालक के व्यवहार पर बहुत गहरा प्रभाव पड़ता है।

परिवार बालक की प्राथमिक आवश्यकताओं को ही पूरा नहीं करता बल्कि उसकी शिक्षा और समाजीकरण की देखभाल करने वाला प्रथम संस्थान भी है। यहीं पर उसके विचार और आदर्शों का प्रारंभ होता है। साथ ही साथ उसको स्वयं के एवं साथियों के प्रति व्यवहार जो आगे चलकर घर एवं सामाजिक परिस्थतियों में समायोजन के विकास को निर्धारित करता है। दूसरे शब्दों में यह कहा जा सकता है कि सीखने को प्रभावित करने वाले विभिन्न पक्षों में परिवार भी एक महत्वपूर्ण पक्ष है। यह एक प्रमाणित तथ्य है कि परिवार और परिवार का वातावरण बच्चे के विकास, शैक्षिक उपलब्धि एवं व्यावसायिक उपलब्धि में विशेष महत्वपूर्ण भूमिका प्रदान करता है। परिवार बच्चे के प्रारंभिक समाजीकरण तथा व्यक्तित्व विकास को सम्बृद्ध करता है। अच्छा परिणाम, परिवार के बिना शर्त किये गए प्यार, स्वीकार्य, आपसी समझ, व्यवहार प्रबंधन, निर्देश, शैक्षिक प्रोत्साहन तथा सहायता से होता है (दास, गुप्ता, सान्याल)।

पारिवारिक वातावरण

वेवस्टर डिक्शनरी (2004) के अनुसार परिवार व्यक्तियों का समूह है जिसमें माता, पिता और बच्चे सम्मिलित होते हैं।

वेवस्टर डिक्शनरी (2004) के अनुसार परिवार समस्त बाह्य एवं आंतरिक परिस्थितयों का समूह है जो उपस्थित, विकास एवं जीवों के उद्धार को प्रभावित करता है।

शैक्षिक उपलब्धि

शैक्षिक उपलब्धि छात्रों के द्वारा प्राप्त कक्षा 8 के अंतिम परीक्षा के परिणाम को लिया गया।

किशोरावस्था

आगरा के सरकारी एवं प्राइवेट (निजी) स्कूलों की कक्षा में पढ़ने वाले छात्र-छात्राओं जिनकी उम्र 13 -18 वर्ष के मध्य है, उनको वर्तमान अध्ययन में किशोर के रूप में माना गया है।

समीक्षा

सम्बंधित साहित्य का आलोचनात्मक अध्ययन

पारिवारिक पृष्ठभूमि से सम्बंधित उपलब्ध अध्ययनों का आलोचनात्मक अध्ययन करने पर शोधकर्ता ने पाया कि विभिन्न शोधकर्ताओं के शोध निष्कर्ष में पारिवारिक वातावरण और शैक्षिक उपलब्धि में महत्वपूर्ण सार्थक सम्बन्ध हैं जैसे– ***अग्रवाल (1986), फाल्गुनी (1997), चौहान (1993), चेरियन*** *और* ***मालेश (1998), शर्मा (2002), रोकर*** *और* ***रचेल (2005), (2006), दौलत वी मीना (2008), जगप्रीत कौर (2009), शर्मा, मनिका*** *और* ***ताहिरा खातून (2011), चावला अनीता (2012),*** आदि ने पाया कि अभिभावक उत्साहवर्धन का छात्रों की शैक्षिक उपलब्धि पर सकारात्मक प्रभाव पड़ता है जबकि ***देवी*** *और* ***मयूरी (2003), सीला सिन चुंग (2011)*** ने पाया की पारिवारिक कारक का छात्रों की शैक्षिक उपलब्धि में कोई योगदान नहीं होता है हालांकि देवी और मयूरी ने स्कूल कारक जैसे योग्य शिक्षक, अच्छी भौतिक सुविधाएं, कक्षा संगठन, पाठ्यक्रम की जांच, प्रभावकारी शिक्षक विधियों का छात्रों की शैक्षिक उपलब्धि पर सार्थक योगदान होता है। ***फातिमा (2003)***, ने भी अपने अध्ययन में पाया कि परिवार के प्रकार परिवार के वातावरण और छात्रों की उपलब्धि में सार्थक संबंध नहीं है जबकि ***रानी (1998)*** और ***नीरज (2001)*** पारिवारिक वातावरण को छात्रों के सामाजिक, मानसिक एवं सांवेगिक विकास का महत्वपूर्ण कारक पाया। ***आरती (2005)***, ***मोहन रानी*** *और* ***लथा (2005)*** ने पाया कि पारिवारिक वातावरण, छात्रों के परिवार में समायोजन और शैक्षिक उपलब्धि को सार्थक रूप से प्रभावित करता है। ***एडियानी***

(2008) के अध्ययन से निष्कर्ष निकला कि छात्रों की अवस्थिति (ग्रामीण/शहरी) का छात्रों पर सकारात्मक प्रभाव पड़ता है। ***उवाफो (2008)*** ने परिवार के प्रकार (एकल अभिभावक/अभिभावक) और लिंग (छात्र/छात्राओं) को अपने अध्ययन में छात्रों की शैक्षिक उपलब्धि का एक महत्वपूर्ण निर्धारक के रूप में पाया गया।

विधि और प्रक्रिया

प्रस्तुत शोध पत्र पारिवारिक वातावरण का किशोरों की शैक्षिक उपलब्धि में योगदान पर केंद्रित है। प्रस्तुत शोध में विवरणात्मक विधि का प्रयोग किया गया है। जनसंख्या के रूप में उत्तर प्रदेश के आगरा जनपद के वर्ष 2012–13 में पढ़ रहे सभी माध्यमिक स्तर के छात्र हैं। क्योंकि प्रस्तुत शोध में परिभाषित की गई जनसंख्या अत्यधिक है इसलिए 920 माध्यमिक छात्रों को न्यादर्श के रूप में (Simple random sampling) चुना गया है। इसके लिए सभी माध्यमिक विद्यालयों में से (सरकारी एवं प्राइवेट) 12 विद्यालय चुने गए। तत्पश्चात् इन विद्यालयों के कक्षा 9 के सभी विद्यार्थियों को न्यादर्श के रूप में लिया गया है।

उपकरण का प्रयोग

डाटा एकत्रित करने के लिए डा. वीना शाह (2012) द्वारा विकसित पारिवारिक वातावरण स्केल का उपयोग किया गया। उपकरण के मूल्याकन एवं विषय वैधता विभिन्न विमाओं की वैधता भिन्न–भिन्न हैं।

उद्देश्य

- प्रस्तुत अध्ययन का उद्देश्य पारिवारिक वातावरण की शैक्षिक उपलब्धि पर प्रभाव जानना है।

इस उद्देश्य की पूर्ति के लिए निम्न शून्य परिकल्पना बनाई गई :

- H_0 *पारिवारिक वातावरण का किशोरों की शैक्षिक उपलब्धि में कोई महत्वपूर्ण योगदान नहीं हैं।*

इस परिकल्पना की जाँच के लिए रिग्रेशन विधि का प्रयोग किया गया जिसमें मुक्त चर (independent variable) पारिवारिक वातावरण की दस विमाए हैं। इन सभी दस विमाओं का आश्रित चर का शैक्षणिक उपलब्धि पर प्रभाव परीक्षण के लिए बहु प्रतिमान विश्लेषण का प्रयोग किया गया। इस विधि के प्रयोग का उद्देश्य प्रत्येक विमा का व्यक्तिगत रुप से तथा सभी विमाओं का एक साथ शैक्षिक उपलब्धि में योगदान का अध्ययन करना है।

तालिका-1

चर	शैक्षिक उपलब्धि	आराम बनाम मुक्त	भोग बनाम परिहार	आंशिकता बनाम निष्पक्षता	ध्यान बनाम लापरवाही	स्वीकृति बनाम अस्वीकृति	सक्रिय बनाम निष्क्रिय संबंध	विश्वास बनाम अविश्वास	प्रभावी बनाम निष्प्रभावी	उम्मीद बनाम निराशा	खुला बनाम बंद सम्प्रेषी
शैक्षिक उपलब्धि	1.000	0.060*	.362*	.204**	.349**	.337**	.268**	.206**	.123**	.221**	.275**
आराम बनाम मुक्त		1.00	.076**	.145**	-.062*	-.015	.113*	.040	.109**	.077**	.067
भोग बनाम परिहार			1.00	.322**	.531**	.570**	.533**	.404**	.169**	.379**	.528**
आंशिकता बनाम निष्पक्षता				1.00	.271**	.268**	.333**	.286**	.163**	.252**	.309**
ध्यान बनाम लापरवाही					1.00	.619**	.488**	.366**	.086**	.337**	.516**
स्वीकृति बनाम अस्वीकृति						1.00	.518**	.428**	.166**	.384**	.512**
सक्रिय बनाम निष्क्रिय संबंध							1.00	.397**	.217**	.386**	.476**
विश्वास बनाम अविश्वास								1.00	.117**	.346**	.363**
प्रभावी बनाम निष्प्रभावी									1.00	.157**	.199**
उम्मीद बनाम निराशा										1.00	.311**
खुला बनाम बंद सम्प्रेषी											1.00

चरणवार प्रतिगमन विश्लेषण का प्रयोग किया गया। प्राप्त परिणामों को निम्न तालिका में संक्षेपित किया गया है। प्रतिमान विश्लेषण (Regression Analysis) प्रयोग करने से पहले स्वतंत्र चर एवं आश्रित चर के सहसंबंध आव्यूह (Correlations matrix) निकाला गया जिसे निम्न तालिका–1 में दर्शाया गया है।

तालिका 1 (विवरण) पारिवारिक वातावरण की सभी दस विमाओं और शैक्षिक उपलब्धि के बीच अंत:सहसंबंध प्रस्तुत करती है। आश्रित चर जो कि शैक्षिक उपलब्धि जिसका पारिवारिक विमाओं के साथ महत्वपूर्ण संबंध पाया गया, जैसे योग बनाम परिहार (.362), आंशिकता बनाम निष्पक्षता (0. 204), ध्यान बनाम लापरवाही (0. 349), स्वीकृति बनाम अस्वीकृति (0.337), विश्वास बनाम अविश्वास (0. 206), प्रभावी एवं निष्प्रभावी (0.123), सक्रिय बनाम निष्क्रिय संबंध (0.268), 0.01 स्तर पर और आसक्ति बनाम परिहार (0.060), 0.05 स्तर पर सार्थक पायी गयी। चरणवार प्रतिगमन (step & wise regression analysis) का प्रयोग पारिवारिक वातावरण का योगदान किशोरों की शैक्षिक उपलब्धि में योगदान को जानने के लिए किया गया।

तालिका–2

मुक्त चर	r	R	R^2	R^2 परिवर्तन	β	B	F
भोग बनाम परिहार	0.362	0.362	.131	.131	0.191	.882	138.042**
भोग बनाम परिहार ध्यान बनाम लापरवाही	0.349	0.406	.165	.034	0.160	.631	37.042**
भोग बनाम परिहार ध्यान बनाम लापरवाही स्वीकृति बनाम अस्वीकृति	0.337	0.415	.172	.007	0.110	.441	7.917**
भोग बनाम परिहार ध्यान बनाम लापरवाही स्वीकृति बनाम अस्वीकृति आंशिकता बनाम निष्पक्षता	0.204	0.420	.176	.004	0.069	0.389	4.688**
स्थिर = 43.267							

तालिका–2 में रिग्रेशन विश्लेषण के परिणाम दर्शाते है कि परिवार वातावरण की दस विमाओं में चार विमायें शैक्षिक उपलब्धि को सार्थक महत्वपूर्ण रूप से निर्धारित

करती हैं। तालिका–2 दर्शाती है कि बहुसहसम्बन्ध (त) और बहुसहसम्बन्ध का गुणांक (त2) तथा (थ) अनुपात प्रत्येक नए चर के सम्बन्ध में निर्धारक का अंतिम गुणांक (त2) दिखाता है कि 17.6 प्रतिशत शैक्षिक उपलब्धि में परिवर्तन उपरोक्त 4 विमाओं के कारण से होता है। उपरोक्त 4 विमाओं, सबसे अधिक योगदान 13.1 : (भोग बनाम परिहार), द्वितीय महत्वपूर्ण कारक जिसका योगदान 3.4 : (ध्यान बनाम लापरवाही) होता है। इसी प्रकार से 0.7 (स्वीकृति बनाम अस्वीकृति) और (0.004:) (आंशिकता बनाम निष्पक्षता) का योगदान शैक्षिक उपलब्धि के निर्धारण से होता है। सभी थ अनुपात 0.01 स्तर पर सार्थक पाये गए तथा सभी विमाओं का प्रत्येक विमा सापेक्षित या घनात्मक सहसंबंध है। प्रत्येक विमा का योगदान पायी चित्र में दर्शाया गया है तथा व्याख्या सहित भाग में अन्य चर का योगदान होता हैं। तालिका में रिग्रेशन गुणांक (Bs) भी दिया गया है जिसका उपयोग रिग्रेशन समीकरण में होगा। सामान्य रिग्रेशन निम्न प्रकार से लिखा जा सकता है:

$$Y = B_1X_1 + B_2X_2 + B_3X_3 + B_4X_4 + ... + C$$

जहाँ X_1, X_2, X_3, X_4 = प्रत्येक व्यक्ति के दिखाए गए चरों के कच्चे आंकड़े हैं।

B_1, B_2, B_3, B_4 = रिग्रेशन गुणांक है।

C एक अचर है।

Contribution of Dimension

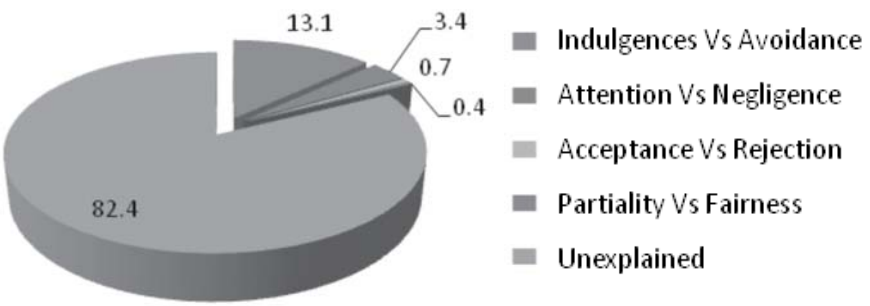

परिवार वातावरण की विमाओ का सभी विद्याथियों के सापेक्षित योगदान

तालिका–2 का उपयोग करके किसी भी विद्यार्थी का शैक्षिक उपलब्धि प्राप्तांक निम्नलिखित समीकरण से निकाला जा सकता है।

$$Y = .882\ X_1 + 63\ X_2 + .441\ X_3 + .389\ X_4 + 43.267$$

यदि आप किसी विद्यार्थी के कच्चे प्राप्तांक (raw score) X_1, X_2, X_3 और X_4 को जानते है तो हम उसकी शैक्षिक उपलब्धि को उपरोक्त समीकरण में रख कर ज्ञात करते है।

निष्कर्ष

शोध का निष्कर्ष पारिवारिक वातावरण का युवाओं की शैक्षिक उपलब्धि पर प्रभाव से सम्बंधित है। पारिवारिक वातावरण को वर्तमान शोध में दस विमाओं में मापा गया है। जिसमें से चार विमाओं का शैक्षिक उपलब्धि में सार्थक योगदान पाया गया है। यह निष्कर्ष निकला जा सकता है कि जिन युवाओं को उनके हिसाब से कार्य करने का मौका मिलता है वह अपनी प्रतिभा और क्षमता से कार्य करते हैं। जब इनके विचारों को नहीं समझा जाता या माना जाता है तो निष्क्रिय हो जाते है जिससे उनकी कार्य क्षमता पर नकारात्मक प्रभाव पड़ता है। इसमें कोई शंका नहीं है की युवा अपनी इस आयु में अत्यधिक ऊर्जावान होते हैं इसलिए यह विमाएँ चार विमाएँ, किसी व्यक्ति के विकास के लिए आवश्यक हैं। जिससे शैक्षिक उपलब्धि में विकास होता है।

अत: अभिभावकों को सलाह दी जाती है कि युवाओं पर भरोसा रखें और भरोसा दें अच्छा करने के लिए। यह निष्कर्ष अग्रवाल (1986), चेरियन और मालेश (1998), फूलगिरी (1997), चौहान (1993), शर्मा (2002), रोकर और रचेल (2001) के अनुसार ही है। शैक्षिक उपलब्धि शिक्षा प्रक्रिया का अंतिम निर्गम है। यह विभिन्न विमाओं पर निर्भर करता है,जो ज्ञानात्मक और अज्ञानात्मक प्रकृति की हो सकती हैं। इसके अतिरिक्त विभिन्न वातावरणीय कारक भी उपलब्धि को प्रभावित करते है। प्रस्तुत शोध में, पारिवारिक वातावरण एक मुख्य कारक के रूप में आता है जो युवाओं की विद्यालय की उपलब्धि को दर्शाता है। जिसकी निर्धारित क्षमता 17.6 प्रतिशत है। इससे निष्कर्ष निकल सकते हैं कि अभिभावकों का अपने बच्चों पर ध्यान नितांत आवश्यक है।

संदर्भ

अग्रवाल, के. एल.(1986): ए स्टडी ऑफ द इफेक्ट ऑफ पेरेंटल एंकरेजमेंट ऑन द एडुक्केशनल डेवलपमेंट ऑफ द स्टूडेंट्स अनपब्लिशड्, पी.एच.डी, गढ़वाल यूनिवर्सिटी।

चेरियन और एम.सी, मलेहस (1998): रिलेशनशिप बिटवीन फैमिली इनकम एंड अचीवमेंट इन इंग्लिश ऑफ चिल्ड्रन फ्रॉम सिंगल एंड टू पेरेंट्स फैमिली साइकोलॉजिकल रिपोर्ट्स: 83,431-434.

चेरियन और एम. सी, मलेहस (1998): रिलेशनशिप बिटवीन फैमिली इनकम एंड अचीवमेंट इन इंग्लिश ऑफ चिल्ड्रन फ्रॉम सिंगल एंड टू पेरेंट्स फैमिली साइकोलॉजिकल रिपोर्ट्सरू 83,431-434.

चौहान, पी (1993): रिलेटिव कंट्रीब्यूशन ऑफ सम सोसिओ-कल्चरल एंड फेमिलियल वैरिएबल टू अंडरअचीवमेंन्ट इन साइंस ऐट क्लास VIII लेवल, AMU, अलीगढ़।

दास गुप्ता, मनीषा - सान्याल, निलांजना (2008): फैमिली, द चीफ कैटेलिस्ट इन प्रमोटिंग चिल्ड्रेंस इमोशनल वेल्बींगरू अ रिव्यु, इंडियन जर्नल ऑफ कम्यूनिटी साइकोलॉजी, 4(1), 48-63 .

गौर, वी., गुप्ता, एन. (2004), द इफेक्ट ऑफ सेस ऑन पर्सीवीड होम एनवायरनमेंट, देव शक्ति, 1:41-49 .

जुयाल, एस.एल, - गौर, वी (2007): फैमिली स्ट्रक्चर एंड जेंडर ऐज कोरिलेट्स ऑफ मैरिटल एडजस्टमेंट एंड मेंटल हेल्थ ऑफ द मैरिड कपल. बेहवियरल साइंटिस्ट, 8:93-100 .

कणप्प, डी. सारा (1993): द कंटेम्पररी थिसॉरस ऑफ सोशल साइंस टर्म्स एंड सीनोनिम्स. द ओरिक्स प्रेस .

लीड्ज, टी. जलिनोजा (1983) द पर्सन : हिज - हर डेवलपमेंट थ्रोआउट द लाइफ साइकिल रिवर्सड़, बेसिक बुक्स, न्यूयॉर्क .

मार्टिन, ए.जे, (1998): सेल्फ- हैंडीकैपिंग एंड डिफेंसिव पेसिमिस्म रू प्रेडिक्टर्स एंड कोंसेकुएंसस फ्रॉम ए सेल्फ-वॉर्थ मोटिवेशन पर्सपेक्टिव, अनपब्लिश्ड डॉक्टोरल शोध, वेस्टर्न सिडनी विश्वविद्यालय, मैकआर्थर, सिडनी।

मार्टिन, ए.जे., मार्श, एच. देबस, आर.एल. (2001 इ): सेल्फ-हैंडीकैपिंग एंड डिफेंसिव पेसिमिस्म : एक्सप्लोरिंग ए मॉडल ऑफ प्रेडिक्टर्स एंड आउटकॉम्स फ्रॉम ए सेल्फ-प्रोटेक्शन पर्सपेक्टिव, जर्नल ऑफ एडुकेशनल साइकोलॉजी, 93, 87-102 .

एम.सी. डेनियल एस., कैम्पबेल, टी. सीबर्न डी. (1990) फैमिली - ऑरिएंटेड प्राइमरी केयर, ए मैन्युअल फॉर मेडिकल प्रोवाइडर्स, स्प्रिंगर - वर्लग, न्यूयोर्क

शाहा, आर. शर्मा, ए. (1984). ए स्टडी ऑफ द इफेक्ट ऑफ फैमिली क्लाइमेट ऑन स्टूडेंटस अकादमिक अचीवमेंट्स 8(3), 11-15.

शर्मा, एस. निधि, (2002) ए स्टडी ऑफ द इफेक्ट ऑफ पेरेंटल इन्वूल्वमेंट एंड एस्पिरेशन ऑन अकादमिक अचीवमेंट ऑफ +2 स्टूडेंट्स। डिपार्टमेंट ऑफ एडुकेशन, पंजाब यूनिवर्सिटी

वेब्स्टर डिक्शनरी (2004), द न्यू इंटरनेशनल वेबस्टर्स कांप्रहेंसिव डिक्शनरी, 247. ट्रिडेंट प्रेस इंटरनेशनल, यू.एस.ए.

वेब्स्टर डिक्शनरी (2004), द न्यू इंटरनेशनल वेबस्टर्स कांप्रहेंसिव डिक्शनरी, 457. ट्रिडेंट प्रेस इंटरनेशनल, यू.एस.ए.

अडेनियी (2008) ''फाइव वेरिएबल्स एस प्रेडिक्टर ऑफ अकादमिक अचीवमेन्ट अमंग स्कूल गोइंग एडोलैसैंट्स पर्सपेक्टिव इन एडुक्रेशन'' बड़ोदा, 24 (2), 113-120

आरती, सी., - रत्ना, प्रभा (2005) ''इन्फ्लुएंस ऑफ सिलेक्टेड फैमिली वेरिएबल्स ऑन फैमिली एनवायरनमेंट ऑफ एडोलैसैंट्स'' जर्नल ऑफ कम्युनिटी गाइडेंस एंड रिसर्च। 22(2), 176-184.

चावला, एन. अनीता (2012). ''द रेलशनशिप बिटवीन फैमिली एनवायरनमेंट एंड अकादमिक अचीवमेंट,'' इंडियन स्प्रीम रिसर्च जर्नल (12)

देवी, एस., मयूरी, के. (2003). द इफेक्ट ऑफ फैमिली एंड स्कूल ऑन द अचीवमेंट ऑफ रेसिडेंटियल स्कूल चिल्ड्रन, जर्नल ऑफ कम्युनिटी गाइडेंस एंड रिसर्च, 20(2), 139-148

फातिमा (2003), रिलेशनशिप ऑफ फैमिली क्लाइमेट टु अकादमिक अचीवमेंट, एम.एड. डिसरटेशन, डिपार्टमेंट ऑफ एडुक्रेशन, ए.एम.यू, अलीगढ़

फुल्गिनी (1997), चाइल्ड डेवलपमेंट य एब्स्ट्रैक्ट एंड बिब्लिओग्राफी 71(3) पब्लिशड बई शिकागो प्रेस फॉर दी सोसाइटी फॉर रिसर्च इन चाइल्ड डेवलपमेंट

एम. रानी - लता (2005) जर्नल ऑफ द इंडियन अकादमी ऑफ एप्लाइड साइकोलॉजी, जनवरी - जुलाई 2005, 31(2), 18-23.

शाह. बीना (2006), फैमिली क्लाइमेट स्केल, नेशनल साइकोलॉजिकल कॉरपोरेशन

शर्मा, मनिका, - खातून, ताहिरा (2011) ''फैमिली वेरिएबल एस अ प्रेडिक्टर ऑफ स्टूडेंट्स अचीवमेंट इन साइंस'' जर्नल ऑफ कम्युनिटी गाइडेंस एंड रिसर्च 28, (1) 28-36

उवाइफो, वी. ओ. (2008): द इफेक्ट्स ऑफ फैमिली स्ट्रक्चर एंड पेरेंटहुड ऑन द अकादमिक परफॉरमेंस ऑफ नाइजीरियन यूनिवर्सिटी स्टूडेंट्स, स्टडीज इन होम कम्युनिकेशन साइंस, 2(2), 121-124.

परिप्रेक्ष्य
वर्ष 23, अंक 3, दिसंबर 2016

शोध टिप्पणी/संवाद

आचार्य कामन्दक की कामन्दकीय नीतिसार में निहित शिक्षक की संकल्पना

मुरलीधर मिश्रा* एवं **ललित कुमार पोषवाल****

सारांश

शिक्षक कैसा होना चाहिए? उसे किन गुणों से युक्त होना चाहिए? यह निरन्तर चिंतन एवं अध्ययन का विषय रहा है। इस चिंतन ने जहाँ भविष्य की आवश्यकताओं को देखते हुए शिक्षण-अधिगम प्रौद्योगिकी में सुधार लाने की ओर संकेत किया है, वहीं अतीत की मूल्य निधियों में शिक्षक के स्वरूप एवं उनकी स्थिति में सुधार के सूत्र खोजने या व्यक्त मान्यताओं को प्रतिस्थापित करने के प्रयास हुए हैं। आचार्य कामन्दक ने अपनी रचना कामन्दकीय नीतिसार में विविध सन्दर्भों में नीति सूत्र कहे हैं, जिनके विश्लेषण से शिक्षक की संकल्पना उभर सकती है। इस मान्यता के साथ कामन्दकीय नीतिसार में निहित शिक्षक सम्बन्धी विचारों को समझने के क्रम में शैक्षिक अध्ययन करने का निश्चय किया गया। निष्कर्ष में यह पाया गया कि कामन्दकीय नीतिसार के अनुसार शिक्षक का संस्कारी होना आवश्यक है तभी तो वह अपने आचरण का आदर्श विद्यार्थियों के सामने रखकर अपने शिष्यों को सुसंस्कारी बना सकता है। शिक्षक को सहनशील, दया, दान, क्षमा, कृतज्ञता और अद्रोह इत्यादि गुणों से युक्त माना है। शिक्षक जितेन्द्रिय, अनुशासित और अध्ययनशील होने के साथ-साथ सन्तोषी प्रवृत्ति का होना चाहिए। वह शिक्षण कार्य को अर्थोपार्जन न मानकर समाज सेवा माने और अपने विद्यार्थी को गलत कार्य करने से तत्काल रोक दे।

* सह-प्रोफेसर, शिक्षा संकाय, वनस्थली विद्यापीठ, टोंक, राजस्थान E-mail: dr.mdm@live.com
** शोधार्थी, शिक्षा संकाय, वनस्थली विद्यापीठ, टोंक, राजस्थान

प्रस्तावना

शिक्षा व्यवस्था की मुख्य जिम्मेदारी शिक्षक की है। इसलिए आजादी के पश्चात् शिक्षा व्यवस्था में सुधार एवं परिवर्तन के लिए गठित विभिन्न आयोगों के सुझाव और निर्मित की गयी शिक्षा नीतियों में व्यक्त संकल्प में शिक्षकों के स्वरूप एवं उनकी स्थिति में सुधार की इच्छा व्यक्त हुई है। शिक्षक कैसा होना चाहिए? उसे किन गुणों से युक्त होना चाहिए? यह निरन्तर चिंतन एवं अध्ययन का विषय रहा है। इस चिंतन ने जहाँ भविष्य की आवश्यकताओं को देखते हुए शिक्षण-अधिगम प्रौद्योगिकी में सुधार लाने की ओर संकेत किया है, वहीं अतीत की मूल्य निधियों में शिक्षक के स्वरूप एवं उनकी स्थिति में सुधार के सूत्र खोजने या व्यक्त मान्यताओं प्रतिस्थापित करने के प्रयास हुए हैं। साहित्य न केवल विरासत को सहेजता है वरन् मानव जाति का पथ प्रदर्शन करता है। साहित्य निधि की श्रेष्ठ रचनाएँ तात्कालिक ही नहीं वरन कालान्तर के लिए प्रासंगिक होती हैं।

इस अवधारणा के आधार पर साहित्यिक रचनाओं में निहित दर्शन के आधार पर आदर्श शिक्षक की संकल्पना जानने हेतु अनेक अध्ययन हुए हैं जिसके अन्तर्गत दिवेकर (1960) ने 'उपनिषदों के दर्शन पर आलोचनात्मक अध्ययन' कर पाया कि गुरु के आचरण से शिष्य का चारित्रिक एवं नैतिक विकास होता है। चारलू (1971) ने 'भगवद्गीता का शैक्षिक दर्शन' का अध्ययन कर पाया कि परमतत्व का ज्ञान प्राप्त करने में शिक्षक छात्र के सहयोगी बन सकते हैं। शर्मा (1976) ने 'जैन साहित्य में शिक्षा की आवश्यकता' का अध्ययन में पाया कि वैदिक सिद्धान्त के आश्रम और ऋषियों के समान जैन साहित्य में भी संत एवं श्रमण हैं, लेकिन ये सन्त एक स्थान पर अधिक समय नहीं रूकते। खोसला (1983) ने 'सिक्ख गुरु के शिक्षा दर्शन' का अध्ययन में पाया कि शिक्षक को पावन गुरु और मानव गुरु के रूप में उल्लेख किया गया है। पाण्डेय (1985) ने 'गीता और कुरान के शैक्षिक दर्शन पर तुलनात्मक अध्ययन' में पाया कि शिक्षक को बालक के अनुसार ज्ञान देना चाहिए। और उस पर अपना निर्णय थोपना नहीं चाहिए जिससे वह स्वतंत्र निर्णय ले सके। चिरवालिकर (1988) ने 'संस्कृत और गैर संस्कृत साहित्य में वर्णित शिक्षा दर्शन के साथ प्रयोजनवाद, आदर्शवाद, टैगोर के आदर्शवाद, प्रकृतिवाद से तुलना' का अध्ययन में पाया कि शिक्षक को पूर्ण स्वायत्तता प्राप्त थी। उसमें वैज्ञानिक और आध्यात्मिक आदर्श संयोजित थे।

पचौरी (2002) ने 'भारतीय जीवन मूल्य आधारित शिक्षा व्यवस्था के सन्दर्भ में आचार्य श्रीराम शर्मा के शैक्षिक विचारों की प्रासंगिकता' का अध्ययन में पाया कि

शिक्षक मृदुभाषी, उदार, विषय का ज्ञाता तथा यथार्थ में विश्वास रखने वाला होना चाहिए। मलकानी (2002) ने 'महात्मा ज्योतिराव फुले के शैक्षिक दर्शन एवं प्रभाव का समालोचनात्मक अध्ययन' में पाया कि शिक्षक घमण्डी एवं स्वार्थी नहीं होने चाहिए। चतुर्वेदी (2004) ने 'जिद्दू कृष्णमूर्ति के शैक्षिक चिन्तन में, बौद्ध धर्म के तत्व एक दर्शन' का अध्ययन में पाया कि शिक्षक सत्यनिष्ठ, धार्मिक, जागरूक, प्रज्ञावान, संवेदनशील, निर्भीक, शिक्षण के प्रति समर्पित और गुणवान होना चाहिए जबकि बौद्ध दर्शन के अनुसार शिक्षक सदाचारी, संयमी, प्रज्ञावान, शीलवान, सरल, सादगीपूर्ण, सजग, शुद्ध विचारों वाला होना चाहिए। कुमावत (2010) ने 'स्वामी विवेकानन्द एवं रवीन्द्रनाथ टैगोर के शैक्षिक विचारों का राष्ट्रीय परिप्रेक्ष्य में एक तुलनात्मक अध्ययन' में पाया कि दोनों महापुरूषों ने विद्यार्थियों के ब्रह्मचर्य एवं चारित्रिक विकास में गुरु की भूमिका को महत्त्वपूर्ण माना है। सिंह (2011) ने 'जिद्दू कृष्णमूर्ति के शैक्षिक चिंतन की समसामयिक परिप्रेक्ष्य में प्रासंगिकता' का अध्ययन में पाया कि शिक्षक ही राष्ट्र के लिए भावी नागरिकों को तैयार करता है इसलिए उसको स्वयं तथा विद्यार्थियों के प्रति जागरूक रहना चाहिए। शिक्षक–विद्यार्थी दोनों के मध्य प्रेम व विनम्रता होना आवश्यक है।

यादव (2012) ने नालन्दा एवं तक्षशिला विश्वविद्यालयों की शैक्षिक व्यवस्था का अध्ययन सम्पूर्ण शैक्षिक गुणवत्ता के सन्दर्भ में किया एवं पाया कि गुरु धर्मानुरूप आचारण करते हुए अपने कर्त्तव्य का निर्वहन करते थे। बालक का सर्वांगीण विकास करना, बालक की जिस विषय में रूचि है उस विषय का पूर्ण ज्ञान प्रदान करना, उसकी जिज्ञासाओं को शान्त करना, धर्मानुरूप आचरण, आत्म विकास, स्वाध्याय, आत्म संयम, सेवाभाव आदि गुणों का विकास करना और पुत्रवत उसकी रक्षा करना, छात्र की समस्त आवश्यकताओं को ध्यान रखना गुरु का धर्म था। जैन (2013) ने 'आधुनिक तेरापंथ जैन सम्प्रदाय के साहित्य में निहित शैक्षिक विचारधारा का उनकी वर्तमान में प्रासंगिकता के सन्दर्भ में गवेषणात्मक अध्ययन' में पाया कि गुरु अहिंसक, सत्यग्राही, ब्रह्मचारी, संयम, सात्विक, नैतिकता से पूर्ण हो तथा उसमें द्वेष, क्रोध न हो। शिक्षक विद्यार्थियों को व्यावहारिक ज्ञान दे। गुरु के पास रहकर ही ज्ञान प्राप्त किया जा सकता है तथा सभी समस्याओं का समाधान किया जा सकता हैं। शिक्षक के पाँच सूत्रों (एकाग्रता, संकल्प शक्ति, आध्यात्मिक, अनुशासन, संवेदनशीलता, प्रामाणिकता) से युक्त होना चाहिए।

आचार्य कामन्दक की रचना 'कामन्दकीय नीतिसार' भी ऐसी ही श्रेष्ठ रचना है। जिसमें आचार्य कौटिल्य के शिष्य कामन्दक ने अर्थशास्त्र का अवलम्बन लेकर व्यावहारिक

विषयों को महत्त्व प्रदान करते हुए नवीन मान्यताओं की स्थापना का प्रयास किया है। कामन्दकीय नीतिसार न केवल राजनीति की दृष्टि से अपितु ज्ञान, धर्म, कर्म, समाज, मूल्य और शिक्षा के सार्वभौमिक विचारों की विशद् व्याख्या की दृष्टि से महत्वपूर्ण है। आचार्य कामन्दक ने अपनी रचना कामन्दकीय नीतिसार में विविध सन्दर्भों में नीति सूत्र कहे हैं, जिनके विश्लेषण से शिक्षक की संकल्पना उभर सकती है और यह शिक्षक संकल्पना समसामयिक परिप्रेक्ष्य में भी उपयोगी सिद्ध हो सकती है। इस मान्यता के साथ शोधकर्ता द्वय ने कामन्दकीय नीतिसार में निहित शिक्षक सम्बन्धी विचारों को समझने के क्रम में अध्ययन शैक्षिक अध्ययन करने का निश्चय किया।

शोध उद्देश्य

क आचार्य कामन्दक द्वारा रचित कामन्दकीय नीतिसार में शिक्षक की संकल्पना से सम्बन्धित विचारों की पहचान करना।

ख कामन्दकीय नीतिसार में निहित शिक्षक-संकल्पना की व्याख्या करना।

शोध विधि

दर्शन जीवन का मूल मन्त्र है। भारतीय संस्कृति में इसका योगदान चिरपरिचित है। लगभग सभी प्राचीन ग्रंथ दार्शनिक विधि में लिखे गए हैं। प्रस्तुत शोध को प्रमुख रूप से दार्शनिक अनुसंधान विधि द्वारा सम्पन्न किया गया। साथ ही प्रस्तुत शोध में कामन्दकीय नीतिसार में निहित विभिन्न विचारों की विश्लेषण एवं व्याख्या करनी है अतः इस हेतु विषय वस्तु विश्लेषण प्रविधि का भी प्रयोग किया गया।

प्रदत्त स्रोत

प्रस्तुत शोध अध्ययन में कामन्दक द्वारा विरचित कामन्दकीय नीतिसार प्राथमिक स्रोत तथा कामन्दकीय नीतिसार से सम्बन्धित विभिन्न प्रकार के व्यक्तिगत प्रलेख, सार्वजनिक प्रलेख, व्यक्तिगत शोधकर्ता के प्रकाशन, शोधकर्ता के प्रतिवेदन, पत्र-पत्रिकाएँ तथा साहित्य द्वितीयक स्रोत रहे।

कामन्दकीय नीतिसार में निहित शिक्षक संकल्पना

शास्त्रों में दस श्रेणी के व्यक्तियों को गुरु के रूप में उल्लेख किया है-

''उपाध्याय, पिता, माता, ज्येष्ठो, भ्राता, महिपति।
मातुलः श्चसुरश्चैव मातामह पितामह।
वर्ण ज्येष्ठ पितृ व्यश्च सर्वते गुरवः समृताः।।''

अर्थात् उपाध्याय, माता-पिता, बड़ा भाई, राजा, मामा, श्वसुर, ब्राह्मण ये दस व्यक्ति गुरु कहे गये हैं किन्तु इन सबमें आचार्य श्रेणी के गुरु की महत्ता विशेष रूप से प्रतिपादित की गई है। 'आचार्य श्रेष्ठों गुरूणाम्' गुरूओं में आचार्य ही श्रेष्ठ है।

कामन्दकीय नीतिसार में शिक्षक के लिए गुरु और आचार्य शब्दों का प्रयोग हुआ है। आचार्य कामन्दक में गुरु की परिभाषा निम्न शब्दों में व्यक्त करते है-

नृपस्य ते हि सुहृदस्त एव गुरवो मताः।
य एनमुत्पथगतं वारयन्त्यनिवारिताः।।
सज्जमानकार्येषु सुहृदो वारयन्ति ये।
सत्यन्तेनैव सुहृदो गुरवो गुरवो हि ते।।

राजा के जो प्रियजन हैं वे ही उसके गुरु हैं। जो राजा को गलत पथ पर जाने से तत्काल रोक देते हैं और उसके भय के कारण सदुपदेश देने से डरते नहीं हैं। जो सुहृदय अनैतिक कार्यों में लिप्त राजा को इन कार्यों से निकालने का प्रयास करते हैं वही व्यक्ति सत्य ही हितकारी है और गुरु का भी सच्चा गुरु है। उपर्युक्त विचारों का तार्किक विश्लेषण करने पर स्पष्ट होता है कि जो व्यक्ति को कुमार्ग पर जाने से या अनैतिक कार्यों में प्रवृत्त होने से तत्काल रोक देते हैं ऐसे सुहृदय महापुरुष गुरु के भी गुरु है। गुरु ही अपने शिष्य को अंधकार से प्रकाश की ओर ले जाने का प्रयास करता है इसलिए गुरु के वचनों का पालन करना चाहिए-

सज्जमानमकार्येषु निरुन्धुर्मन्त्रिणो नृपम्।
गुरूणामपि चैतेषां श्रृणुयाद्वचनं नृपः।।

जिस समय राजा अनैतिक कार्य में प्रवृत हो तब मन्त्रियों को उसे कुकृत्य करने से दूर करना चाहिए। राजा को भी उचित है कि उसे मन्त्रियों और गुरूजनों के वचनों का पालन करना चाहिए। इनसे दो बातें सिद्ध होती हैं कि कामन्दकीय नीतिसार के अनुसार ब्राह्मण के अतिरिक्त क्षत्रिय और वैश्य भी गुरु और आचार्य होते थे। दूसरा यह की आधुनिक शिक्षा मनोविज्ञान के अनुसार माता ही बालक की प्रथम शिक्षका होती है। उसी प्रकार कामन्दकीय नीतिसार भी इस तथ्य को स्वीकार करता है कि जो भी व्यक्ति बालक को सुमार्ग पर चलाने का प्रयास करे, वही उसका गुरु है।

शिक्षक के लिए आवश्यक गुण

कामन्दकीय नीतिसार में वर्णित विचारों का तार्किक विश्लेषण करने पर शिक्षक के निम्न गुण परिलक्षित होते हैं–

क. विषय का ज्ञाता

एक अध्यापक में तीन गुणों का होना अनिवार्य है, उनमें एक है– उस विषय पर पूर्ण अधिकार जिसका वह अध्ययन कराने जा रहा है। कामन्दक ने चार वेद, वेदांग, शिक्षा के छः अंग, मीमांसा, न्याय विस्तार, धर्मशास्त्र सहित अनेक लौकिक विषयों को पाठ्यक्रम में स्थान दिया है। अतः गुरु का प्रथम आवश्यक गुण इन सभी विषयों का ज्ञाता होना है क्योंकि शिक्षक को स्वयं इन विषयों का ज्ञान नहीं होगा तो विद्यार्थियों को कैसे शिक्षा दे पायेगा। कामन्दकीय नीतिसार में उल्लेख किया है कि–

यदि न स्यान्नरपतिः सम्यूनेता ततः प्रजा।
अकर्णधारा जलधौ विप्लवेतेह नौरिव।।

यदि पूर्ण शिक्षा प्राप्त राजा अर्थात् शिक्षक नहीं होगा तो उसके शिष्य पर उसी प्रकार संकट बना रहेगा जिस प्रकार पतवार विहिन जहाज में यात्रा करने वाले व्यक्तियों के जीवन पर संकट बना रहता है क्योंकि पानी की लहरों के थपेड़ों से वह जहाज किसी भी दिशा में जा सकता है और किसी भी समय जल में डूब सकता है। इसी कारण वर्तमान में शिक्षा के सभी स्तरों पर शिक्षकों की आवश्यक योग्यता निर्धारित कर रखी है जिससे बालकों के भविष्य के साथ खिलवाड़ न हो। विषय का ज्ञाता होने का यह अर्थ नहीं है कि शिक्षक किसी ऐसी खोज में लगा रहे जो अब तक प्रकट नहीं हुई अथवा जो नये तथ्यों का उद्घाटन करने वाली हो। इसको यह समझना चाहिए कि उसे अपने विषय के क्षेत्र का विस्तृत ज्ञान होना आवश्यक है। प्राथमिक और उच्च प्राथमिक विद्यालय में एक या दो ही शिक्षक होते हैं और उन्हीं को सभी विषयों का अध्ययन करना होता है।

ख. जितेन्द्रिय

कामन्दकीय नीतिसार के अनुसार शिक्षक के लिए मन और इन्द्रियों पर नियंत्रण तथा विकारों के त्यागने का उल्लेख किया है–

कामःक्रोधस्तथा लोभो हर्षो मानो मदस्तथा।
षड्वर्गमुत्सृजेदेनमस्मिन्त्यक्ते सुखी नृपः।।

काम, क्रोध, लोभ, हर्ष, मान और मद यह षड्विकार राजा को सदा त्यागने चाहिए। इनके त्यागने से राजा को सुख समृद्धि प्राप्त होती है। इन षड्विकारों पर विजय प्राप्त करके ही भगवान परशुराम जितेन्द्रिय कहलाये यथा–

शत्रुषड्वर्गमुत्सृज्य जामदग्न्यो जितेन्द्रियः।।

भगवान परशुराम एक श्रेष्ठ मनुष्य के साथ ही महान गुरु थे जिन्होंने भीष्म और कर्ण जैसे महापुरुषों को शिक्षा प्रदान की थी। भगवान परशुराम की इस योग्यता के आधार पर प्रत्येक शिक्षक को इन छः शत्रुओं पर नियंत्रण रखकर जितेन्द्रिय होना चाहिए। क्योंकि शिक्षक–विद्यार्थी के लिए अनुकरणीय है, आदर्श है। विद्यार्थी शिक्षक के आदर्शों का अनुकरण करके जितेन्द्रिय बन सकते हैं। ब्रह्माण्ड पर्व में आचार्य का लक्ष्य स्पष्ट करते हुए कहा है कि– जो स्वयं श्रेष्ठ आचरण और अन्य को भी वैसा ही आचरण करने को प्रेरित करे वह आचार्य है।

ग. अनुशासित

शिक्षक के लिए अनुशासित होना अत्यावश्यक है, क्योंकि वह विद्यार्थी के लिए जीता जागता उदाहरण है। विद्यार्थी अध्यापक को देखकर ही अनुशासित रहना सीखता है। इस कारण सर्वप्रथम मन को नियंत्रण में रखना चाहिए–

विषयामिषलोभेन मनः प्रेरयतीन्द्रियम्।
तन्निरुन्ध्यात्प्रयत्नेन जिते तस्मिन् जितेन्द्रियः।।

विषय भोग की लालसा से मन ही इन्द्रियों को प्रेरित करता है। इन्द्रियों का विषयों से योग न होने देना ही इन्द्रिय निग्रह है, इस कारण यत्नपूर्वक मन को नियंत्रित रखना चाहिए। मन विजय से ही इन्द्रिय विजय का मार्ग प्रशस्त होता है–

प्रकीर्णविषयारण्ये धावन्तं विप्रमाथिनम्।
ज्ञानांकुशेन कुर्व्वीत वश्यमिन्द्रियदन्तिनम्।।

विषय रूपी विशाल अरण्य में दौड़ते हुए इन्द्रिय रूपी विक्षुब्ध हाथी को ज्ञान रूपी अंकुश से नियंत्रित कर लिया जाता है। अतः संसारिक कष्टों से युक्त मार्ग में भटके हुए मनुष्य शास्त्र ज्ञान द्वारा इन्द्रियों का निग्रह करते हुए अपने मन को नियन्त्रित कर

लेता है। यदि शिक्षक इन्द्रियों को अनुशासन में नहीं रखेगा तो वह लौकिक या आध्यात्मिक जगत में कोई कार्य उचित प्रकार से नहीं कर सकता है।

घ. विनयशीलता

कामन्दकीय नीतिसार भारत की प्राचीन राजनीति का विशिष्ट ग्रंथ है जिसमें विनयशीलता को प्रमुख रूप से उपस्थापित किया है यथा–

नयस्य विनयो मूलं विनयः शास्त्रनिश्चयः।

विनय नीति का मूल है, विनय को शास्त्रों के अध्ययन द्वारा प्रतिपादित किया गया है। इसलिए आचार्य कामन्दक अध्यापक में विनयशीलता का गुण आवश्यक मानते हैं।

विनयो हीन्द्रियजयस्तद्यक्तः शास्त्रमृच्छति।
तन्निष्ठस्य हि शास्त्राथाः प्रसीदन्ति ततः परम्।।

विनय ही इन्द्रिय जय में साधक है। इस विनय से युक्त पुरूष ही शास्त्रों का अध्ययन कर पाता है। इसमें निष्ठा करने के उपरान्त ही सम्पूर्ण शास्त्रों के अर्थ प्रकाशित होते हैं। अध्यापक राष्ट्र निर्माता है। वह विद्यार्थी को किसी भी दिशा की तरफ मोड़ सकता है। यदि शिक्षक में स्वयं में विनयशीलता का गुण नहीं होगा तो उसके विद्यार्थी कैसे विनयशील होंगे। यदि विद्यार्थी विनय सम्पन्न नहीं होंगे तो राष्ट्र का विकास अवरूद्ध होकर पापाचार की ओर उन्मुख हो जाएगा। इसलिए कामन्दकीय नीतिसार में राजा को यह निर्देश दिया है कि उसको अपने राजकुमारों के लिए विनय सिखानें की उचित व्यवस्था करनी चाहिए।

विनयोपग्रहान्भृत्यैः कुर्व्वीत नृपतिः सुतान्।
अविनीतकुमारं हि कुलमाशु विनश्चति ।।

राजा के लिए आवश्यक है कि उसको अपने अनुचरों द्वारा राजकुमारों को विनम्रता सीखलाने की कोशिश करनी चाहिए। यदि राजकुमार विनयशील नहीं होगा तो वह कुल शीघ्र ही नष्ट हो जायेगा। इसी प्रकार गुरु को भी अपने गुरूकुल में अन्य व्यक्तियों द्वारा अपने विद्यार्थियों को विनय की शिक्षा दी जानी चाहिए जिससे समाज और देश प्रगति की दिशा में आगे बढ़ सके। वर्तमान समय में हमारे विद्यार्थी उग्र, हिंसक आन्दोलन और तोड़-फोड़ करते हैं। ऐसी हिंसक गतिविधियाँ विनय

की शिक्षा से स्वतः ही समाप्त हो जाएंगी। विनयी व्यक्ति परम सेव्यता को प्राप्त होता है। यथा–

''परां विनीतः समुपैति सेव्यताम्।।

अतः कामन्दकीय नीतिसार के अनुसार अध्यापक का विनय ही भूषण है।

ड. सहनशील

आचार्य कामन्दक अध्यापक में सहनशीलता का गुण आवश्यक रूप से स्वीकार करते हैं–

''काले सहिष्णुर्गिरी।।

अध्यापक को समय पर पर्वत के समान सहनशील होना चाहिए। उसे समाज, विद्यालय और विद्यार्थियों की सभी प्रकार की समस्याओं का समाधान धैर्यपूर्वक करना चाहिए और जीवन की प्रत्येक परिस्थिति में सहनशील होना चाहिए।

'सर्वक्लेशसहिष्णुता।।

अध्यापक को प्रतिकूल परिस्थितियों में भी आक्रामक रवैया नहीं अपनाना चाहिए। अध्यापक को जीवन में कई प्रकार के अनुभव प्राप्त होते हैं परन्तु उसे सभी प्रकार की स्थितियों में सहनशील रहना ही श्रेयस्कर है।

च. मूल्यांकन में सक्षम

कामन्दकीय नीतिसार में मूल्यांकन की क्षमता के विषय में उल्लेख किया है। यथा–

साधुतैषाममात्यानां तद्विधेभ्यस्तु बुद्धिमान्।
चक्षुष्मतश्व शिल्प/ परीक्षेत गुणद्वयम्।।
स्वजनेभ्यो विजानीयात् फलस्थानानवग्रहम्।
परिकर्म्म स्वदाक्ष्य/ विज्ञानं धारयिष्णुताम्।।
गुणद्वयं परीक्षेत प्रागलभ्यं प्रतिभान्तथा।
कथायोगेन बुध्येत वाग्मित्वं सत्यवादिताम्।।
उत्साह/ प्रभाव/ तथा क्लेशसहिष्णुताम्।
घुति/वानुराग/ स्थैर्य्यं वा यदि लक्षयेत्।।
भक्ति मत्री/ शौच/ जानीयाद्वयवहारतः।
संवासिभ्यो बलं सत्त्वमारोग्यं शीलमेव च।।

अर्थात् बुद्धिमान राजा के लिए आवश्यक है कि अमात्यों की विधेय वस्तुओं से दूरदर्शिता और शिल्पता के गुणों की परीक्षा करनी चाहिए। फल के स्थान, अवर्षण, अंगसंस्कार, चतुरता, धारण इत्यादि की जाँच अपने जनों से करानी चाहिए। उतावलापन और बुद्धि की चतुरता इन गुणों की परीक्षा करनी चाहिए। व्यक्ति से वार्तालाप द्वारा सत्यवादिता की परीक्षा की जा सकती है। उत्साह, प्रभाव, सहनशीलता, घृति, प्रेम, स्थिरता, भक्ति, मित्रता, पवित्रता व्यवहार से जाननी चाहिए तथा अपने समीप के निवासियों से बल, सत्त्व, आरोग्यता और शील को जानना चाहिए। राजा के समान ही मूल्यांकन क्षमता एक अध्यापक का भी आवश्यक गुण है। विद्यार्थी गुरुकुल या गुरूग्रह में ही विद्याध्ययन करते थे। सर्वप्रथम मूल्यांकन क्षमता अध्यापक के लिए इसलिए आवश्यक है कि कौनसा विद्यार्थी शिक्षा प्राप्त करने योग्य है और कौनसा नहीं। अध्यापक वार्तालाप के माध्यम से विद्यार्थी की वाचालता और सत्यवादिता का मूल्यांकन कर सकता है। विद्यार्थी के व्यवहार से उसकी अध्यापक के प्रति भक्ति, श्रद्धा तथा गुरू–गृह में साथी विद्यार्थियों से उसके संबंधों से मित्रता और उसके चरित्र की पवित्रता इत्यादि का मूल्यांकन शिक्षक कर सकता है। अध्यापक अपने साथियों या स्वजनों से विद्यार्थी की आरोग्यता, बल तथा सहनशीलता का मूल्यांकन कराना चाहिए। स्तब्धता (जड़ता) तथा चपलता इत्यादि बातें अध्यापक को शिक्षा देते समय स्वयं प्रत्यक्ष रूप से जाननी चाहिए। विद्यार्थी शिक्षा को कितना ग्रहण कर रहा है और उस पर कितना ध्यान देने की आवश्यकता है इत्यादि विभिन्न बातों का अध्यापक को मूल्यांकन करना पड़ता है। अतः अध्यापक में मूल्यांकन क्षमता का गुण होना आवश्यक है।

छ. नैतिक गुण युक्त

कामन्दकीय नीतिसार में प्राचीन भारतीय संस्कृति का चित्रण प्रस्तुत किया गया है। इसी के अनुसार एक आचार्य के लिए अधोलिखित निम्न गुणों को अनिवार्य गया माना है–

''अहिंसा सुनृता वाणी सत्यं शौचं दया क्षमा''
कुलं शीलं दया दानं धर्मः सत्यं कृतज्ञता।
अद्रोह इति येष्वेतदाचार्योंस्तान्प्रचक्षते।।

अर्थात् हिंसा न करना, सत्य और प्रिय वाणी का प्रयोग करना, प्रत्येक कार्य में सत्यता, मन और कर्म से पवित्रता, दयावान, क्षमाशील, श्रेष्ठ शीलवान, दानशील,

धर्मात्मा, कृतज्ञता, अद्रोह यह नैतिक गुण जिसमें विद्यमान हों, वे सभी आचार्य हैं। साथ ही स्पष्ट किया है कि–

आनृशंस्यं परो धर्म्मः सर्व्वप्राणभृतां यतः।।

सभी मनुष्यों का प्रमुख कर्त्तव्य है कि प्राणियों पर क्रूरता न करे, राजा को भी दुखी मनुष्यों का प्रेम पूर्वक पालन करना चाहिए। उसी प्रकार शिक्षक के लिए अहिंसा परम धर्म है, शिक्षक हिंसक या क्रोधी न हो, सभी विद्यार्थियों से प्रेम पूर्वक बातें करना, गुरुगृह में उनका उचित प्रकार से पालन–पोषण करना तथा उनकी समस्याओं का प्रेम पूर्वक समाधान करना, शिक्षक का दायित्व है। इसलिए उसे कठोर वाणी का प्रयोग नहीं करना चाहिए–

''पीडितोऽपि हि मेधावि न तां वाचमुदीरयेत्।।

पीड़ित होकर भी विद्वान व्यक्ति को कठोर वाणी का प्रयोग नहीं करना चाहिए। शिक्षक से भी कटु वचनों की आशा नहीं की जा सकती है। प्रिय वचन बोलने वाले व्यक्तियों को कामन्दक ने शरीर धारी देवता के रूप में चित्रित किया है–

ये प्रियाणि प्रभाषन्ते प्रयच्छन्ति च सत्कृतिम्।
श्रीमन्तोऽनिन्द्यचरिता देवास्ते नरविग्रहाः।।

जो प्रिय वचनों का प्रयोग करते हैं और दूसरों का आदर सत्कार करते हैं वह निन्दा से रहित, उत्तम चरित्र वाला मनुष्य शरीर धारी देवता ही है। शिक्षक को भी भारतीय समाज में गोविन्द के समकक्ष ही स्थान प्राप्त है इसलिए उनका दायित्व और भी अधिक हो जाता है। इस कारण शिक्षक को सदैव प्रिय वचन ही बोलने चाहिए।

उपर्युक्त विचारों से स्पष्ट है कि शिक्षक में परनिन्दा का त्याग, स्व धर्म पालन, दया, क्षमा, प्रिय व सत्य वचनों का प्रयोग, अहिंसा का पालन इत्यादि नैतिक गुण आवश्यक रूप से होने चाहिए।

ज. उत्तम शारीरिक स्वास्थ्य

शिक्षक को शारीरिक रूप से स्वस्थ होना चाहिए जिससे वह छात्रों के व्यक्तित्व का उचित प्रकार से विकास कर सके। इसलिए कामन्दकीय नीतिसार में व्यायाम को महत्त्व दिया है–

उत्साहशक्तिहीनत्वाद्वृद्धो दीर्घामयस्तथा।।

वृद्ध, दीर्घ रोगी, उत्साहहीन और शक्तिहीन ऐसे व्यक्ति स्वयं ही तिरस्कृत हैं। अर्थात् निर्बलता जीवन का सबसे बड़ा पाप है। शिक्षक को विद्यालय में शिक्षण के अतिरिक्त अन्य सह शैक्षणिक क्रियाकलाप करने होते हैं। यदि शिक्षक स्वयं दीर्घ रोगी अथवा उत्साहहीन, शक्तिहीन होगा तो वह शिक्षण कार्य ठीक प्रकार से नहीं करा पायेगा और न ही सह शैक्षणिक गतिविधियों को ठीक प्रकार से सम्पादित करा पायेगा। इसलिए कामन्दकीय नीतिसार में शिक्षक के लिए उत्तम शारीरिक स्वास्थ्य प्रमुख गुण स्वीकार किया गया है।

शैक्षिक निहितार्थ

आज शिक्षक राष्ट्र निर्माता नहीं है। उन्होंने अपने कार्य को समाज सेवा न मानकर धन कमाने का साधन बना लिया है। वह उत्तरदायित्व विहीन हो गया है। लेकिन कामन्दकीय नीतिसार के अनुसार शिक्षक का संस्कारी होना आवश्यक है तभी तो वह अपने आचरण का आदर्श विद्यार्थियों के सामने रखकर अपने शिष्यों को सुसंस्कारी बना सकता है। इसलिए शिक्षक को सहनशील, दया, दान, क्षमा, कृतज्ञता और अद्रोह इत्यादि गुणों से युक्त माना है। नीतिसार के अनुसार शिक्षक जितेन्द्रिय, अनुशासित और अध्ययनशील होने के साथ-साथ सन्तोषी प्रवृत्ति का होना चाहिए जो शिक्षण कार्य को अर्थोपार्जन न मानकर समाज सेवा माने। कामन्दकीय नीतिसार में उल्लेख किया है गुरु अपने विद्यार्थी को गलत कार्य करने पर तत्काल रोक देता है। अर्थात् उसका पथ प्रदर्शन करता है। इसलिए गुरु बनाने से पहले गुरु की सही पहचान कर लेना आवश्यक है नहीं तो शिष्य पतवार विहीन नौका के समान सुमार्ग से भटक जायेंगे।

इस प्रकार कामन्दकीय नीतिसार की शिक्षा के आधार पर शिक्षकों में उच्च गुणों का विकास किया जा सकता है जिससे भावी पीढ़ी का भविष्य उज्ज्वल बनाया जा सकता है। कामन्दकीय नीतिसार की शिक्षक की संकल्पना से प्रभावित होकर शिक्षक अपने शैक्षिक कार्य के वास्तविक उद्देश्य को जान कर एक आदर्श शिक्षक बनने की शपथ ले सकते हैं जो ज्ञान दान को एक पवित्र कार्य बना कर शिक्षक के गिरते स्तर को ऊँचा उठा सकते हैं और शिक्षक अपनी पुरानी प्रतिष्ठा को प्राप्त कर सकें।

संदर्भ

बेस्ट, जॉन डब्ल्यू (1969) : रिसर्च इन एजूकेशन, प्रेन्टिस हॉल ऑफ इण्डिया, नई दिल्ली.

चतुर्वेदी, शारदा (2004) ने 'जिद्दू कृष्णमूर्ति के शैक्षिक चिन्तन में, बौद्ध धर्म के तत्व एक दर्शन', शोध प्रबंध, शिक्षा, डॉ. बी.आर. अम्बेडकर, विश्वविद्यालय, आगरा.

चारलू एम.के. (1971) : भगवद्गीता का शैक्षिक दर्शन, शोध प्रबंध, शिक्षा, एस.पी. वि.वि., आणद.

चिरवालिकर, वाई. के. (1988) ने 'संस्कृत और गैर संस्कृत साहित्य में वर्णित शिक्षा दर्शन के साथ प्रयोजनवाद, आदर्शवाद, टैगोर के आदर्शवाद, प्रकृतिवाद से तुलना', शोध प्रबंध, शिक्षा, नागपुर विश्वविद्यालय, नागपुर.

दिवेकर, एस.एस. (1960) : उपनिषदों के दर्शन पर आलोचनात्मक अध्ययन, शोध प्रबंध, शिक्षा, मैसूर विश्वविद्यालय, मैसूर

गुर्जर, वृजेन्द सिंह (2002) : संस्कृत नीतिशास्त्रीय ग्रन्थों के परिप्रेक्ष्य में कामन्दकीय नीतिसार का तुलनात्मक अध्ययन, शोध प्रबंध, शिक्षा, राजस्थान वि.वि., जयपुर.

जैन, बीना देवी (2013) : आधुनिक तेरापंथ जैन सम्प्रदाय के साहित्य में निहित शैक्षिक विचारधारा का उनकी वर्तमान में प्रासंगिकता के सन्दर्भ में गवेषणात्मक अध्ययन, शोध प्रबंध, शिक्षा, वनस्थली विद्यापीठ, राजस्थान.

खोसला, डी. एन. (1983) ने 'सिक्ख गुरु के शिक्षा दर्शन' शोध प्रबंध, शिक्षा, मेरठ विश्वविद्यालय, मेरठ.

कुमावत, छगनलाल (2010) : 'स्वामी विवेकानन्द एवं रवीन्द्रनाथ टैगोर के शैक्षिक विचारों का राष्ट्रीय परिप्रेक्ष्य में तुलनात्मक अध्ययन, शोध प्रबंध, शिक्षा, राजस्थान वि.वि., जयपुर.

मलकानी, टी (2002): महात्मा ज्योतिराव फुले के शैक्षिक दर्शन एवं प्रभाव का समालोचनात्मक अध्ययन, पी-एच.डी. शिक्षा, कुमायूँ विश्वविद्यालय, नैनीताल.

मेहरोत्रा, पदम नाथ एवं सिडाना, ए. के. कुमार (2005) : सामाजिक अध्ययन शिक्षण, शिक्षा प्रकाशन जयपुर.

मिश्र, ज्वाला प्रसाद (संवत 2009) : कामन्दकीय नीतिसार, खेमराज श्री कृष्ण दास, श्री बैकटेश्वर स्टीम प्रेस, बम्बई-4.

पचोरी, आशुतोष (2002) : भारतीय जीवन मूल्य आधारित शिक्षा व्यवस्था के सन्दर्भ में आचार्य श्रीराम शर्मा के शैक्षिक विचारों की प्रासंगिकता, शोध प्रबंध, शिक्षा, बी.आर. अम्बेडकर विश्वविद्यालय, आगरा.

पाण्डेय, जे.बी. (1985) : गीता और कुरान के शैक्षिक दर्शन पर तुलनात्मक अध्ययन, शोध प्रबंध, शिक्षा, कुमायूँ, विश्वविद्यालय, नैनीताल.

शर्मा, जे. (1975) : उपनिषदों के शैक्षिक सिद्धान्तों का विश्लेषण', पी-एच.डी. संस्कृत, गौहाटी विश्वविद्यालय.

शर्मा, आर. ए. (1986) : शिक्षा अनुसंधान, इण्टरनेशनल पब्लिशिंग हाउस, मेरठ.

सिंह, रेवत (2011) : जिद्दू कृष्णमूर्ति के शैक्षिक चिंतन की समसामयिक परिप्रेक्ष्य में प्रासंगिकता, शोध प्रबंध, शिक्षा, राजस्थान वि.वि.,जयपुर.

उषा दुबे (2008) : रामचरितमानस में अन्तर्निहित शैक्षिक विचार धारा एवं मूल्य, शोध प्रबंध, शिक्षा, वनस्थली विद्यापीठ, राजस्थान.

यादव, महेश चन्द (2012) : 'नालन्दा एवं तक्षशिला विश्वविद्यालयों की शैक्षिक व्यवस्था का अध्ययन (सम्पूर्ण शैक्षिक गुणवत्ता के संदर्भ में) अध्ययन', शोध प्रबंध, शिक्षा, राजस्थान वि.वि., जयपुर.

परिप्रेक्ष्य
वर्ष 23, अंक 3, दिसंबर 2016

चिंतक और चिंतन

संवैधानिक मूल्य, शिक्षा एवं लोकतंत्र
डा. अम्बेडकर के शिक्षा दर्शन का विवेचन

दिव्यांशु पटेल*

सारांश

प्रस्तुत लेख बाबा साहब डॉ. अम्बेडकर के शिक्षा दर्शन की विवेचना वर्तमान परिदृश्य के सन्दर्भ में करता है। इस लेख में लोकतांत्रिक व्यवस्था में शिक्षा के महत्त्व और समानता आधारित समाज के निर्माण में शिक्षा की भूमिका पर प्रकाश डाला गया है। डॉ. अम्बेडकर के शिक्षा दर्शन में शिक्षा को महज साक्षरता तक सीमित न रखकर राष्ट्र निर्माण की प्रक्रिया का एक महत्त्वपूर्ण कारक माना गया है। डॉ. अम्बेडकर शिक्षा के प्रसार को लोकतंत्र की मजबूती के लिए आवश्यक मानते थे और इसके लिए संविधान की रचना के दौरान भारत में शिक्षा को समाज के हर वर्ग तक पहुँचाने के लिए उसे राज्य के नीति निदेशक तत्व में जगह दी। यह लेख लोकतंत्र, संवैधानिक मूल्यों और शिक्षा के अंतर्संबंध की विवेचना करते हुए इस तथ्य की पड़ताल भी करता है कि स्वतंत्र भारत में शिक्षा को किस प्रकार से वार्षिक बजट में अभी भी उपेक्षा का शिकार होना पड़ता है, जिसका कुप्रभाव भारत के मानव विकास सूचकांक में हर वर्ष देखने को मिलता है।

डॉ. अम्बेडकर के शिक्षा दर्शन का विवेचन

किसी भी देश में लोकतांत्रिक मूल्यों की मजबूती उसके संविधान पर टिकी हुई होती है। संविधान में निहित प्रावधान कई कारकों को ध्यान में रखकर बनाये जाते हैं, ताकि उनके अनुपालन के जरिये एक समावेशी और लोकतांत्रिक व्यवस्था का मजबूती से निर्माण किया जा सके। शिक्षा, एक ऐसा ही कारक है, जिस पर समुचित ध्यान दिए बिना न्याय के साथ विकास की अवधारणा पूरी नहीं हो सकती है। यूँ तो भारतीय संविधान में शिक्षा को नीति निर्देशक तत्त्व और मूल अधिकार, दोनों ही सूचियों में स्थान दिया गया है, यानि कि इसे राज्य के लिए नैतिक और वैधानिक, दोनों तरह की जिम्मेदारी बनाया गया है किन्तु जब हम

*शोधार्थी, समाजशास्त्र विभाग, जे.एन.यू., नई दिल्ली

देश में शिक्षा व्यवस्था के मूल स्वरूप को देखते हैं तो पाते हैं कि भारत में शिक्षा आज भी विभेदन का एक मुख्य माध्यम बनी हुई है। एक तरफ जब देश के संविधान की रचना करने वाले बाबा साहब डा. भीमराव अम्बेडकर की एक सौ पचीसवी जयंती को पूरे देश में केंद्र सरकार और विभिन्न संस्थाओं द्वारा मनाया जा रहा है, यह जरुरी हो जाता है कि सवैधानिक मूल्य, शिक्षा और लोकतंत्र के अंतर्संबंधों की विवेचना बाबा साहब के शिक्षा दर्शन के आलोक में की जाए।

आमतौर पर यह देखा जाता रहा है कि भारत में शिक्षा को लेकर बहस होती ही रहती है किन्तु इसका स्वरूप क्या हो, इसके सरोकार क्या हो, ये सवाल आते ही समाज में चुप्पी छा जाती है और उन्हें एक विशेष वर्ग के लिए आरक्षित समझ कर छोड़ दिया जाता है। ऐसा करते वक्त हम अक्सर यह भूल जाते हैं कि शिक्षा के सरोकारों में आस- पास की सामाजिक घटनाओं के प्रति विवेचनात्मक दृष्टि विकसित करना भी शामिल है। मगर हमारी शिक्षा प्रणाली इस कदर खाँचों में बाँध दी गयी है कि कक्षा के अंदर के सवालों का समाज के भीतर से उठाने वाले सवालों से कोई साबका ही नहीं रह गया है और विवेचन व विश्लेषण को विद्रोह से प्रतिस्थापित कर सवालों को कैदखाने में डाल दिया गया है।

सत्ता का अपना एक चरित्र होता है और राज्य के तमाम तत्त्व सत्ता को बनाये रखने के लिए अपनी भूमिका का निर्वहन करते हैं किन्तु लोकतंत्र में राज्य से यह स्वाभाविक अपेक्षा की जाती है कि वह शिक्षा, स्वास्थ्य और रोजगार जैसे तीन बुनियादी क्षेत्रों में जनकल्याणकारी दृष्टिकोण अपनाकर नीतियों का निर्धारण करे। लेकिन जब शिक्षा जैसे मूलभूत अधिकारों में कटौती की कोशिश की जाती है, उसे बाजार की जरूरतों के हिसाब से ढालने के प्रयास किये जाते हैं, निजीकरण की मुहीम के जरिये हाशिये के समाज को शिक्षा से दूर किया जाता है, तब समावेशन और लोककल्याण की संकल्पना को झटका लगता है और सत्ता और समाज के बीच एक अंर्तद्वंद की शुरुआत होती है, जिसे दबाने के लिए हर सवाल, हर विवेचना को ''प्रायोजित साजिश'' का नाम देकर इनकी उपेक्षा का रास्ता अख्तियार किया जाता है।

हाल ही में अर्थशास्त्री प्रोफेसर अमर्त्य सेन ने भारत में शिक्षा के अधिकार पर सरकारों की उदासीनता को चिंताजनक बताते हुए कहा कि भारत आने वाले वर्षों में ऐसी महाशक्ति बन सकता है जिसकी एक बहुत बड़ी आबादी केवल इसलिए शिक्षा से दूर होगी क्यूंकि उसके पास पैसे नहीं हैं। बजट में शिक्षा के लिए चार फीसदी से भी कम हिस्सा रखने वाले देश में ये हालात वाकई में दुखद हैं कि प्राथमिक शिक्षा से लेकर उच्च शिक्षा तक के लिए विभिन्न अनुदानों में व्यापक कटौती की जा रही है जिसका प्रभाव आने वाले दिनों में निश्चित रूप से मानव विकास सूचकांक में देखने को मिल सकता है।

शिक्षा और लोकतंत्र का अंतर्संबंध

डॉ. अम्बेडकर ने आजादी से पहले ही शिक्षा और लोकतंत्र के अंतर्संबंध को समझते हुए एक ऐसी शिक्षा व्यवस्था की वकालत की थी जो सामाजिक अंतर्संवाद को प्रोत्साहन देती हो, जिसमें सहनशीलता हो ताकि भिन्न मत रखने वाले भी अपनी बात कह सकें और संवाद के माध्यम से लोकतंत्र मजबूत बन सके। उन्होंने छात्रों से अपने संगठन बनाने की अपील भी की थी, जाहिर है ऐसा करने के पीछे उनका उद्देश्य असहमति की आवाजों को दबाने वाली शिक्षा व्यवस्था में लोकतांत्रिक मूल्य स्थापित करने की थी।

यह हैरत में डालने वाला प्रश्न है कि आजादी के बाद बने तमाम शिक्षा आयोगों और शिक्षा नीतियों में डॉ. अम्बेडकर के शिक्षा संबंधी विचारों को कोई जगह नहीं दी गयी जबकि तमाम उधार के विदेशी चिंतकों, जिनके विचारों और भारतीय सामाजिक व्यवस्था में कोई साम्य नहीं है, शिक्षा नीति में जबरदस्ती थोपा जाता रहा। वर्तमान में जहाँ केंद्र सरकार नयी शिक्षा नीति बनाने की कवायद में मशगूल है, देश भर में छात्रों की असहमति की आवाजों को बेतुके तर्क देकर शांत करने की मुहीम जारी है। इसके जिम्मेदार वे लोग हैं जिन्होंने शिक्षा व्यवस्था में संवाद के लिए कोई जगह छोड़ी ही नहीं है, यही कारण है कि ऐसे किसी भी सवाल को ''अजीब'' समझ कर देखा जाता है।

डॉ. अम्बेडकर शिक्षा के मुद्दे पर अपने गुरु जॉन डीवी से अत्याधिक प्रभावित थे। जॉन डीवी के लोकतंत्र और शिक्षा संबंधी विचारों को भारतीय सन्दर्भ में समझते हुए डॉ. अम्बेडकर ने एक ऐसी शिक्षा नीति की जरूरत को बहुत पहले ही महसूस कर लिया था जो शिक्षा के उद्देश्य को महज साक्षरता अभियान तक सीमित न रखकर सामाजिक बदलावों के व्यापक पहलुओं को अपने साथ शामिल करती हो।

सामाजिक अंतर्संवाद एक ऐसा बिंदु है जहाँ डॉ. अम्बेडकर, जॉन डीवी से प्रभावित दिखाई देते हैं और उनके इस विचार को भारतीय परिस्थितियों में मूर्त रूप देने की वकालत करते हैं। डीवी (2004) ने सामाजिक अंतर्संवाद को सामाजिक जरूरत बताया है और एक गतिशील समाज के लिए यह आवश्यक माना है कि वह अपने सदस्यों को साझा अनुभवों, साझा संस्कृति के प्रति संवेदनशील बना सके। डॉ. अम्बेडकर और डीवी दोनों ही शिक्षा को एक लोकतांत्रिक समाज की स्थापना के लिए आवश्यक मानते थे। जाति आधारित भेदभावों से बंधे भारतीय समाज में लोकतांत्रिक मूल्यों को स्थापित करने में शिक्षा के महत्त्व को रेखांकित करते हुए बम्बई विश्वविद्यालय में बोलते हुए बाबा साहब ने कहा था:

> *''मेरी समझ से एक विश्वविद्यालय का मूलभूत कार्य शिक्षा को जरूरतमंदों और गरीबों के दरवाजे तक पहुँचाना है न कि खुद को केवल परीक्षाओं और उपाधियों तक सीमित रखना। एक विश्वविद्यालय को समाज के पिछड़े वर्ग तक*

शिक्षा का प्रसार करने के लिए समर्पित होना चाहिए और इसके लिए जरूरी है कि पिछड़े वर्गों की विश्वविद्यालयों के प्रबंधन में भागीदारी हो।''

डॉ. अम्बेडकर के विचार में शिक्षा का उद्देश्य महज लोगों को साक्षर करने तक सीमित न रहकर लोगों को शिक्षा संबंधी नीतियों में पर्याप्त भागीदारी देने में होना चाहिए। इस सन्दर्भ में समाज के दलित और पिछड़े वर्ग के प्रतिनिधित्व का शिक्षण संस्थाओं में जब ध्यान रखा जायेगा तभी उनसे संबंधित नीतियों का भली प्रकार से क्रियान्वन हो सकेगा और एक समावेशी शिक्षण नीति का उद्देश्य पूरा हो सकेगा।

शिक्षा के लिए विशेष अनुदान पर डॉ. अम्बेडकर के विचार

भारत के संविधान में नीति निर्देशक तत्व के अंतर्गत सार्वभौमिक शिक्षा को राज्य का कर्त्तव्य बनाया गया था, और अनुच्छेद 21(अ) के तहत इसे मूल अधिकार का दर्जा भी दे दिया गया, मगर विविधताओं से भरे भारतीय समाज में शिक्षा का सार्वभौमीकरण नहीं बल्कि ''समान स्तरीय सार्वभौमीकरण'' जरूरी है, जिसको हासिल करने में भारतीय राज्य व्यवस्था बुरी तरह से विफल रही है। बजट में भी शिक्षा के क्षेत्र में कोई ठोस पहल या निधि की घोषणा नहीं की जाती है।

बाबा साहब डॉ. अम्बेडकर के लिए शिक्षा का महत्त्व उनकी पृष्ठभूमि में निहित था। सामाजिक और आर्थिक विषमताओं से जूझते हुए उन्होंने जिस तरह से अति उच्च उपाधियाँ अपनी मेधा के बलबूते प्राप्त की थीं, वह उन्हें शिक्षा में अन्तर्निहित सामाजिक बदलावों की संभावनाओं को आगे बढ़ने के लिए सदैव प्रेरित करती रहीं। डॉ. अम्बेडकर शिक्षा के सामाजिक सरोकारों को समेकित रूप में देखते थे और इसके लिए सरकार द्वारा बजट में पर्याप्त अनुदान की व्यवस्था को आवश्यक मानते थे। डॉ. अम्बेडकर ने बजट में शिक्षा के लिए पर्याप्त अनुदान की व्यवस्था हेतु बम्बई विधान मंडल में दिए गये अपने भाषण में स्पष्ट रूप से कहा था कि *''हमें प्राथमिक शिक्षा पर अधिक खर्च करना चाहिए... मेरे विचार से यह न्यायोचित होगा कि शिक्षा पर हमारा खर्च इस प्रकार तय किया जाये कि हम लोगों की शिक्षा पर उतना खर्च करें, जितना हम उनसे लेते हैं।''*

भारतीय सामाजिक व्यवस्था में मूलभूत अधिकारों तक से वंचित वर्ग को समाज की मुख्यधारा से जोड़ने के लिए बाबा साहब शिक्षा को एक प्रभावी माध्यम मानते थे , दलित और पिछड़े वर्ग की चिंताजनक शैक्षिक स्थिति और उसमे सुधार के लिए विशेष प्रावधान किये जाने की आवश्यकता पर बल देते हुए बम्बई विधान मंडल में डॉ. अम्बेडकर ने कहा था:

''मैं यहाँ केवल इस बात पर जोर देना चाहता हूँ कि यह देश विभिन्न जातियों से मिलकर बना है। इन सभी जातियों का समाज में स्थान और विकास एक समान

नहीं है। अगर इन सबको एक स्तर पर लाना है, तो इसका एकमात्र समाधान असमानता के सिद्धांत को अपनाना और स्तर से नीचे वालों के प्रति अनुकूल बर्ताव करना है।''

डॉ. अम्बेडकर इस तथ्य से भलीभांति परिचित थे कि महज विद्यालयों की स्थापना और अभिलेखों में दाखिले के आंकड़े के भरोसे न तो शिक्षा का प्रसार समाज के अंतिम छोर तक हो सकता है और न ही शिक्षा का उद्देश्य पूरा हो सकता है। डॉ. अम्बेडकर का शिक्षा दर्शन एक समावेशी और दूरगामी दृष्टिकोण से युक्त अवसंरचना के विकास की वकालत करता है। डॉ. अम्बेडकर दलित और पिछड़ी जातियों के बच्चों को छात्रवृत्ति से भी ज्यादा उन्हें छात्रावास मुहैया कराये जाने पर जोर देते हुए कहते हैं कि–

''मेरे माननीय मित्र और शिक्षा मित्र, मेरी यह बात मान लें कि मेरी पूछताछ और मेरे अनुभव बताते हैं की छात्रवृत्ति देने की जो पद्धति है, वह वास्तव में सरकारी धन की बर्बादी है। मैं माननीय को सुझाव देना चाहता हूँ कि क्या यह बेहतर नहीं होगा कि वह इस धन का उपयोग छात्रावासों की अभिवृद्धि के लिए करें, जिसे या तो सरकार खुद बनाये-चलाये या यह काम पिछड़ी जातियों की शिक्षा को बढ़ावा देने वाली निजी संस्था करे।''

वर्तमान बजट और डॉ. अम्बेडकर के विचारों की प्रासंगिकता

शिक्षा के क्षेत्र में भारत का कुल खर्च यूँ तो उसके सकल घरेलू उत्पाद के मुकाबले हमेशा से ही कम रहा है, खास तौर से तब जबकि इसकी तुलना चीन, ब्राजील या दक्षिण अफ्रीका जैसी अर्थव्यवस्थाओं से की जाती है, शायद अभी तक भारत में यह बुनियादी समझ तमाम शिक्षाविदों और शिक्षा आयोग की सिफारिशों के बाद भी नहीं बन पायी है कि बिना समेकित शैक्षिक विकास और समावेशी नीति के भारत में वह मानव संसाधन तैयार ही नहीं हो सकता है जो अलग-अलग क्षेत्रों की मांग के मुताबिक उपलब्ध हो सके और अवसंरचनात्मक ढांचे को सुदृढ़ कर सके।

इस बात की पुष्टि के लिए सबसे पहले लड़कियों की शिक्षा और उसके लिए किये गए प्रबंधों पर अगर हम नजर डाले, तो पहले केंद्र की महत्त्वाकांक्षी योजना ''बेटी बचाओ बेटी पढ़ाओ'' पर बात आती है, जिसके लिए महज सीमित निधि की व्यवस्था की गयी है और उसमें भी रोचक तथ्य यह है कि कहीं से भी यह स्पष्टता नहीं रखी गयी है कि यह निधि किस रूप में पूरे देश भर में बेटियों को बचाने और उन्हें पढ़ाने में खर्च की जाएगी, उल्टा यह जरूर अंदेशा पैदा हो गया है कि कहीं महज प्रचार-प्रसार के लिए तो यह रकम नहीं रखी गयी है। यही नहीं बल्कि महिला व बाल विकास मंत्रालय के कुल अनुदान में लगभग पचास फीसदी की भारी कटौती की गयी है, जिससे यह तर्क स्वाभाविक रूप से

उत्पन्न होता है कि महिलाओं, उनकी सुरक्षा, और सबसे जरुरी उनकी शिक्षा के लिए क्या वाकई सरकार गंभीर है?

बजट प्रावधान का दूसरा चौकाने वाला पहलु है अल्पसंख्यकों के कल्याण और उनकी शिक्षा के लिए दी जाने वाली राशि में कमी और योजनाओं में दूरदर्शिता का अभाव। आंकड़ों की बात को पहले रखा जाए तो इस साल अल्पसंख्यक मंत्रालय को दी जाने वाली राशि में करीब 600 करोड़ की कमी कर दी गयी है, साथ ही किसी भी अन्य योजना में शिक्षा का प्रसार अल्पसंख्यकों में कैसे होगा इस पर भी कोई दृष्टिकोण बजट में व्यक्त नहीं किया गया है। मुद्दा महज अल्पसंख्यक मंत्रालय को दी जाने वाली मद में कमी का नहीं है, केंद्र सरकार ने अल्पसंख्यकों को प्री-मैट्रिक स्तर पर दी जाने वाली छात्रवृत्ति की सहायता राशि में भी कमी कर दी है और मैट्रिक व उच्च शिक्षा के स्तर पर बढ़ती जरुरतों और समय की मांग के मुताबिक न तो किसी अन्य योजना का विवरण है और न ही राशि में समय और जनसंख्या के अनुपात में कोई बढ़ोत्तरी।

केंद्र सरकार ने अल्पसंख्यंकों के लिए ''नई मंजिल'' नाम से एक योजना शुरू करने की घोषणा की है, जिसका उद्देश्य दीनी मदरसों से निकले छात्रों और मुख्यधारा के छात्रों के बीच के अंतर को पाटने और कौशल निर्माण बताया गया है। यहाँ यह दुविधा पैदा होती है कि जब बजट में प्री-मैट्रिक छात्रवृत्ति तक में कमी की जा रही है, अल्पसंख्यक मंत्रालय की राशि में भारी कमी की गयी है तो ''नयी मंजिल'' योजना से, जिसमें तय की गयी राशि, योजना का क्रियान्वयन आदि का कोई हवाला नहीं है, किस तरह से सरकार संविधान सम्मत ''लोक कल्याणकारी राज्य'' की अवधारणा को नीतियों में लागू करने की बात कर रही है?

उपरोक्त तथ्य व आंकड़े बाबा साहब के शिक्षा दर्शन के ठीक विपरीत हैं, जिसमें वह बजट में लड़कियों और अल्पसंख्यकों की शिक्षा हेतु स्पष्ट नीतियों को शामिल करना अपरिहार्य बताते हैं। लड़कियों की शिक्षा विशेषकर दलित महिलाओं के बीच शिक्षा के प्रसार को डॉ. अम्बेडकर सामाजिक भेदभाव को समाप्त करने हेतु आवश्यक मानते थे। सदियों से गुलामी की बेड़ियों में कैद भारतीय महिलाओं के समक्ष सावित्रीबाई फुले जैसी मनीषियों का आदर्श रखते हुए बाबा साहब यह मानते थे कि औरतों को धर्म की बेड़ियों से आजाद कर स्कूल तक पहुँचाना भारतीय लोकतंत्र की मजबूती के लिए बेहद जरुरी है। अपने इन्ही आदर्शों के अनुपालन में उन्होंने स्वतंत्र भारत में बतौर कानून मंत्री रहते हुए हिन्दू कोड बिल में भारतीय महिलाओं को संपत्ति में अधिकार समेत व्यापक सामजिक बदलाव वाले प्रावधान सम्मिलित किये और यथास्थितिवादियों द्वारा हिन्दू कोड बिल को पास न होने देने की स्थिति में उन्होंने अपने मंत्री पद से इस्तीफा तक दे दिया था।

दरअसल भारत के नीति निर्माताओं को यह समझना ही होगा कि ''वृद्धि और विकास'' दो अलग-अलग पहलू हैं, जिसमें केवल वृद्धि के आंकड़ों के आधार पर जनता को बहुत दिन तक बरगलाया नहीं जा सकता है। यह बजट वृद्धि के पहलू पर कुछ विशेष तबके के लिए उम्मीद जगा सकता है, मगर शिक्षा और उससे जुड़े पहलुओं पर बरती गयी बेरुखी से समन्वित शैक्षिक विकास का भारतीय राज्य के लिए कोई बड़ा मुद्दा न होना एक बार फिर साबित हुआ है। डॉ. अम्बेडकर के लोक कल्याणकारी राज्य संबंधी विचारों को तब तक क्रियान्वित नहीं किया जा सकता है जब तक उनके शिक्षा दर्शन को भारत के विश्वविद्यालयों और संस्थाओं में नीति रूप में लागू नहीं किया जाता।

वृद्धि संबंधी आंकड़ों को दिखने की हड़बड़ी में इस तथ्य की अक्सर अनदेखी कर दी जाती है कि भारत जैसे देश में विकास का पैमाना महज आर्थिक आकंड़ों के आधार पर नहीं हो सकता। सामाजिक कारकों के संदर्भ में हुई समेकित प्रगति के बिना भारत में विकास अधूरा ही रहेगा। अमर्त्य सेन विकास के इसी पहलु पर जोर देते हुए कहते हैं कि भारत में वंचित वर्गों के विकास के लिए शिक्षा ''पोषण'' की तरह है जो उन्हें प्रगति के अन्य मानदंडों पर प्रगति करने के लिए जरूरी आधार प्रदान करती है। यह राज्य की नैतिक जिम्मेदारी है कि वह अपनी नीतियों और बजट में न केवल स्कूल खोलने के प्रावधान करे बल्कि उन विद्यालयों में आवासीय सुविधा और पोषणयुक्त भोजन तक की समुचित व्यवस्था भी की जाए ताकि वंचित वर्ग के बच्चे बिना किसी मानसिक तनाव के अपनी पढ़ाई पूरी कर सकें।

कुमार (2013) डॉ. अम्बेडकर के विचारों की प्रासंगिकता को रेखांकित करते हुए इस तथ्य पर बल देते हैं कि वर्तमान परिदृश्य में शिक्षा संबंधी नीतियों में महात्मा फुले, शाहूजी महाराज, डॉ. अम्बेडकर के विचारों को शामिल किया जाना अपरिहार्य है। भारत के सामाजिक विज्ञान संबंधी संस्थाओं में डॉ अम्बेडकर के विचारों को जिस तरह से नजर अंदाज किया गया है उससे भारत के पाठ्यक्रमों और शिक्षा संबंधी नीतियों में वंचित वर्ग के लिए योजनाएं बनाने में सम्यक दृष्टिकोण का अभाव ही रहा है। डॉ. अम्बेडकर को महज दलित नेता की छवि तक सीमित कर देने की कोशिश को कुमार (2013) एक अकादमिक षड़यंत्र के रूप में परिभाषित करते हैं और डॉ. अम्बेडकर को एक सच्चे राष्ट्र निर्माता के रूप में व्याख्यायित करते हैं, जिनके दर्शन के मूल में समाज के सभी वर्गों और जातियों का एक साथ सम्यक विकास अन्तर्निहित था।

निष्कर्ष

समानता डॉ. अम्बेडकर के विचारों का मूल बिंदु थी, जिसके लिए उन्होंने आजन्म संघर्ष किया। समानता के विभिन्न स्वरूपों यथा कानून के समक्ष समानता, सामजिक समानता,

अवसरों की समानता आदि के लिए उन्होंने संविधान में यथोचित प्रावधान किये और उनके सम्यक अनुपालन के लिए आयोगों और संस्थाओं की व्यवस्था की। बाबा साहब की दृष्टि में भारत एक ऐसा देश होना चाहिए जहाँ समाज के सभी तबके एक साथ एक समान संसाधनों के जरिये एक साझा और समावेशी संस्कृति का निर्माण करें और लोकतंत्र को मजबूत करते हुए देश को आगे बढ़ाये, इस प्रक्रिया में शिक्षा मूलभूत और सबसे महत्त्वपूर्ण कारक है जो राष्ट्र निर्माण की इस प्रक्रिया में नींव का काम करती है।

निःसंदेह ही भारत ने बीते सत्तर वर्षों में लोकतांत्रिक व्यवस्था और एक समावेशी संविधान के जरिये खुद को निरंतर मजबूत किया है किन्तु शिक्षा जैसे मूलभूत मानव विकास के कारक को और भी समावेशी बनाये जाने की जरूरत लगातार बनी हुई है। लोकतंत्र बिना समावेशी शिक्षा नीति के मजबूत नहीं हो सकता है और इसके लिए आवश्यक है कि बजट व सरकारी नीतियों में समाज के हर तबके को उचित प्रतिनिधित्व प्रदान किया जाये। बाबा साहब डॉ. अम्बेडकर के शिक्षा दर्शन को देश की शिक्षा नीति में सम्यक प्रतिनिधित्व मिल सके और एक विविधता को समेटती हुई समावेशी शिक्षा का अवसंरचनात्मक ढाँचे का निर्माण हो सके, यही बाबा साहब डॉ. अम्बेडकर को सही मायनों में श्रद्धांजलि होगी।

संदर्भ

कुमार, विवेक. (2013). *कास्ट एंड डेमोक्रेसी इन इंडिया.* नई दिल्ली: ज्ञान पब्लिशिंग हाउस

केंद्रीय बजट 2015-16. *वित्त मंत्रालय. आर्थिक कार्य विभाग,* बजट प्रभाग, नई दिल्ली: भारत सरकार

डीवी, जॉन. (2004). *शिक्षा व लोकतंत्र.* नई दिल्ली: ग्रंथ शिल्पी प्रकाशन

डा. अम्बेडकर बम्बई विधान मंडल में, बाबा साहेब डॉ. अम्बेडकर संपूर्ण वांग्मय खंड-3, डॉ अम्बेडकर प्रतिष्ठान, सामाजिक न्याय और अधिकारिता मंत्रालय, नई दिल्ली: भारत सरकार

डा. अम्बेडकर साइमन कमीशन के साथ, बाबा साहेब डॉ. अम्बेडकर सम्पूर्ण वांग्मय खंड-3, डॉ अम्बेडकर प्रतिष्ठान, सामाजिक न्याय और अधिकारिता मंत्रालय, नई दिल्ली: भारत सरकार

मुखर्जी, अरुण पी., (2009). *बी आर अम्बेडकर, जॉन डीवी, एंड द मीनिंग ऑफ डेमोक्रेसी,* न्यू लिटररी हिस्ट्री, वॉल्यूम-40, नंबर-2 पीपी. 345-370

वेलास्कर, पद्मा. (2012). *एजुकेशन फॉर लिबरेशन: अंबेडकर्स थॉट एंड दलित विमेंस पर्सपेक्टिव, कंटेम्परी एजुकेशनल डायलाग,* पीपी.245-271, नई दिल्ली : सेज पब्लिकेशन

सेन, अमर्त्य. (2015). द *कंट्री ऑफ फर्स्ट ब्याइज,* नई दिल्ली: ऑक्सफोर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस